रूस की यात्रा

हर्षदेव मालवीय

भूमिका
एलनकुलम मना शंकरन नाम्बूद्रीपाद
मुख्य मंत्री, केरल राज्य

१९५९
भारती साहित्य मन्दिर
फव्वारा — दिल्ली

लेखक की अन्य रचनाएँ

हिन्दी—

ढुलंगते इक्के, पके आम
(भूमिका—श्री पुरुषोत्तमदास टंडन)
शुङ्ग मुङ्ग चुन
लाओ मागा
काँग्रेस की आर्थिक नीति
केरल : राष्ट्र को एक प्रतिवेदन (प्रेस में)

अंग्रेजी—

लैंड रिफार्म्स इन इण्डिया
इंश्योरेन्स बिजिनेस इन इण्डिया
विलेज पंचायत्स इन इण्डिया
(भूमिका—श्री जवाहरलाल नेहरू)
लैंड रिवोल्यूशन इन चायना (प्रेस में)

मूल्य ४)

श्यामलाल गुप्ता, भारती साहित्य मन्दिर, फव्वारा, दिल्ली द्वारा प्रकाशित एवं रसिक प्रिंटर्स, ५, सन्त नगर, करौल बाग, नई दिल्ली में मुद्रित।

भूमिका

श्री हर्षदेव मालवीय की "रूस की यात्रा" में दिलचस्पी से पढ़ गया। समाजवाद की सफलता और विभिन्न देशों की जनता के बीच मैत्री चाहने वाले प्रत्येक भारतीय से मैं यह पुस्तक पढ़ने को कहूँगा।

वर्षों पूर्व, जब सोवियत रूस संसार के सामने एक पहेली के समान था, सिडनी और बियट्रिस वेब ने अपनी अनुपम रचना "सोवियत साम्यवाद—एक नयी सभ्यता" द्वारा संसार को बताया था कि क्योंकर सोवियत संघ में केवल भौतिक एवं सामाजिक क्रान्ति ही नहीं हो रही थी वरन् नये मानव को, उसकी चेतना और दृष्टिकोण को भी गढ़ा जा रहा था। श्री मालवीय की मर्मस्पर्शी रूस-यात्रा की कहानी हमको इसी नये सोवियत मानव के विषय में जानकारी देती है। इस कहानी से हमको पता लगता है कि सोवियत मानव की क्या प्रेरक भावनाएँ हैं, क्या अभिलाषाएँ हैं जो उसे समाजवादी परिवर्तन की ओर ले जाती हैं। हम भारतीय जनता के प्रति सोवियत-मानव के अगाध प्रेम को और उसकी अन्तर्राष्ट्रीयता को भी जानते हैं।

मैं समझता हूँ कि यह रचना केवल यात्रा-कहानी मात्र ही नहीं है, वरन् हृदय को छूने वाला एक मानवीय भावना-प्रधान ग्रन्थ है, जहाँ हम सामान्य सोवियत नागरिकों से मिलते हैं, यथा, वह रूसी युवक जो उर्दू में बातें करता है, या १०८ वर्षीया माँ ज़रीफ़ा, जिसका पुत्र सामूहिक खेत का अध्यक्ष है। यह सोवियत नर और नारी नये समाज की रचना कर रहे हैं।

मुझे यह कहने में कोई हिचकिचाहट नहीं है कि यह रचना भारत की सब भाषाओं में प्रकाशित होनी चाहिए ताकि भारत का प्रत्येक जनसाधारण नागरिक सोवियत मानव को अच्छी तरह समझ ले।

—ई० एम० शंकरन नाम्बूद्रीपाद

विषय-सूची

रूस्की को इण्डुस्की बहुत प्यारा है

रूस्की को इण्डुस्की बहुत प्यारा है, और यह सब हिन्दुस्तानी अच्छी तरह जान लें ।

अगर आप इण्डुस्की हैं और रूस्कियों के देश में आपको घूमने का अवसर प्राप्त हो, तो यह स्नेह बरबस आप महसूस करेंगे, वह आपको सर्वत्र घेर लेगा, उससे आप निकल नहीं सकते । यह स्नेह और प्रेम इधर-उधर, छुट-पुट, इक्का-दुक्का आपको नहीं दिखेगा। आप यह रूसी जन-मानस में पायेंगे, यह समूह का प्रेम है, समूह की भावना है ।

और उस समूह के प्रेम की बड़ी ओजस्वी शक्ति है । उसके प्रबल आकर्षण से, उसकी सच्चाई और निर्मलता से, हृदय को छू लेने की उसकी ताकत से सम्भवतः वही बच पाए जो हृदयहीन है, जो मानव से स्नेह नहीं करता, और जिसके हृदय-कपाट बन्द हैं । जो हृदय वाला है, उसे रूसी जनता को देखकर एक युवक पंजाबी कवि द्वारा लिखी गई इन लाइनों से सहमत होना होगा :

भुल न सकांगे रूस दी जनता,
'गोरे रंग दा गोरा प्यार ।

रूस्की माने रूसी और रूसी हिन्दुस्तानी को इण्डुस्की कहते हैं। वैसे रूस देश या सोवियत संघ कई समाजवादी गणतन्त्रों का संघ है, उसमें उजबेक, किरगिज, कज्जाक, अजेरबैजान, यूक्रेनी, जार्जियन इत्यादि, इत्यादि राष्ट्रीय अल्प जातियाँ हैं । और इस सोवियत संघ का सबसे बड़ा प्रदेश रूसी लोगों का है ।

पर येन-केन-प्रकारेण आर्कटिक के निकट का लेनिनग्राड से लेकर जापान के निकट ब्लाडीवोस्टक तक व्याप्त विशाल भूखण्ड बाहर रूस देश के नाम से समझा जाता है। और हम जब रूस्की कहते हैं तो हमारा तात्पर्य इस बृहद् भूखण्ड के नागरिक से है, चाहे वह रूस प्रदेश का हो, चाहे उज़बेक, किरगिज़, कज़्ज़ाक या कोई और हो।

तो उज़बेक लोगों के देश उज़बेकिस्तान की राजधानी ऐतिहासिक ताशकंत में बाइस इण्डुस्कियों की एक टोली दिन भर डोली। मानो ताशकंत की सड़कों पर जन-जन का प्रेम उमड़ पड़ा। इण्डुस्की घेर लिए गए। जनता ने इण्डुस्कियों पर प्यार उड़ेला। सर्वत्र इण्डुस्कियों को देखने की लालसा थी, उत्कंठा थी, सर्वत्र मुस्कराते दोस्ताना चेहरे थे, स्नेह भरे नेत्र थे, प्रेम की गंगा बहती थी। खुले चेहरे थे, खुली तबियतें थीं, जो कुछ सामने था, वह स्पष्टतः सीधा हृदय से उठने वाला था, उसमें बनावट नहीं थी, उसमें आडम्बर नहीं था। वहाँ इण्डुस्कियों के लिए दिली इज्ज़त है। समूह भी वहाँ सुशिक्षित होता है और वे जानते हैं कि भारत कितना बड़ा उनका पड़ोसी है, इतिहास में पुराना, संस्कृति में पुराना, और कैसे वहाँ की जनता ने हाल में अपने को अंग्रेज साम्राज्यवादियों से मुक्त किया।

मास्को में कुछ भारतीयों को एक पार्क में एक रूस्की भीड़ ने घेर लिया। देख रहे हैं, बातें कर रहे हैं, हाथ मिलाये जाते हैं। फिर कुछ ने हस्ताक्षर के वास्ते आटोग्राफ़ बुकें निकालीं। एक ने अंग्रेजी में दस्तख़त शुरू की तो रूस्की ने माँग की कि अपनी भाषा में लिखो। हिन्दुस्तानी का हस्ताक्षर मिला तो मानो हीरा मोती मिल गया। कितनी खुशी हुई। एक भारतीय ने कुछ रूसी भाषा

पकड़ ली थी। उसने रूस्कियों की उस भीड़ से कहीं कह ही तो दिया : "रूस्की नारोद खरोशो" (अर्थात् रूसी जनता अच्छी है), और साहब वह रूस्की भीड़, उसमें युवावस्था के ही अधिक थे, उछल पड़ी, उबल पड़ी : "इण्डुस्की श्राचेन खरोशो, इण्डुस्की क्रासीवा" (अर्थात् हिन्दुस्तानी बहुत अच्छा है, हिन्दुस्तानी सुन्दर है)।

मास्को में ही वहां की विशाल, स्थायी आश्चर्यजनक कृषि प्रदर्शनी के भव्य उद्यान में तीन भारतीय जा रहे थे। वे हिन्दुस्तानी पोशाक में थे, उनमें एक पंजाबी लम्ब तड़ंग सरदार जी भी थे। रूसी भी टहल ही रहे थे। तो सहसा दूर से दौड़ती, उछलती हांफती काला-काला धूपछांह का चश्मा लगाए सात-आठ साल की गुलाब के फल जैसी एक भोली सुन्दर वालिका आई। और उसने कहा मुझे इण्डुस्की बहुत अच्छे लगते हैं। बस इतना ही कहने वह आई थी। उसने इतना कह दिया तो मानो उसको बड़ी प्रसन्नता हो गई। पता नहीं उसने कब क्या और कितना इण्डुस्कियों के बारे में सुना है। सम्भवतः उसने जीवन में पहली बार उसी दिन इण्डुस्की देखा हो। पर उसे इण्डुस्की प्यारा है, यह निश्चित है। सरदार जी ने उसे एक नेहरू जी का चित्र भेंट कर दिया। उसकी खुशी का, उसके आभार का पारावार न रहा।

अट्ठाइस जुलाई की बात है। उसी दिन मास्को में लुझिनिकी स्टेडियम में छठे विश्वयुवक समारोह का उद्घाटन हुआ था। अपार मानव, लगभग एक लाख, उस विशाल स्टेडियम की सीटों पर बैठा था, मस्कोवाइटों यानी मास्को नगर निवासियों से चप्पा-चप्पा जमीन भरी थी। और मस्कोवाइट गहन-गम्भीर होता है। मस्कोवाइट की अपनी एक शान है, एक उसका निरालापन है। मास्को

निवासी होने का उसे गर्व है। और खुली उसकी तबियत है, चौड़ा उसका कलेजा है। उस खुली तबियत और चौड़े कलेजे से उस दिन एक लाख मस्कोवाइट सब देशों के प्रतिनिधियों का स्वागत कर रहे थे। और तब भारत के साढ़े चार सौ के लगभग विश्व युवक समारोह में आये प्रतिनिधि स्टेडियम में दाखिल हुए। आगे एक युवक विशाल तिरंगा मजबूती से थामे दृढ़ पग उठाता बढ़ रहा था। फिर कई नृत्य मंडलियां थीं। भारतीय नारियों की भड़कीली रंग-बिरंगी साड़ियाँ उस सन्ध्या वेला के सूर्य में खिल उठीं। फिर पंजाबी भंगड़ा नृत्य हो रहा था। फिर भारतीय प्रतिनिधियों का जलूस था, धोती कुर्ता, पैंट कोट या चूड़ीदार पैजामा व अचकन पहने हमारे भाई निकले। सम्पूर्ण प्रयास उनका था, कोई सरकारी सहायता या उच्चस्तरीय निर्देशन उनको न था। और सब दिक्कतों के बावजूद भारतीय जलूस ने अपनी एक फिजां बाँधी, सादगी में भी उसकी एक शान थी। और तब एक गहरी गड़गड़ाहट उस स्टेडियम में उठी। मस्कोवाइटों ने इण्डुस्कियों का गहरा स्वागत किया। तालियों की गड़गड़ाहट से मानो स्टेडियम हिल गया। मस्कोवाइटों का हर्ष नाद गगन में व्याप्त हो गया। स्पष्ट हुआ कि उनको इण्डुस्की कितना प्यारा है, इण्डुस्की का वह कितना आदर करते हैं।

रूस में सब जगह आपको युवक मिलेंगे, युवतियाँ मिलेंगी, बालक मिलेंगे, बालिकायें होंगी जिनको भारतीय फिल्मी गीत याद हैं, जो मजे से उन्हें गा लेते हैं। "आवारा" का गाना "मैं आवारा हूँ, मैं आवारा हूँ" सारा रूस जानता है। "जूता है जापानी, पतलून इंगलिस्तानी, सर पर लाल टोपी रूसी, फिर भी दिल है हिन्दुस्तानी" यह गाना बड़ा ही लोकप्रिय है। सुदूर अजरबैजान प्रदेश की कास्पियन-तट

स्थित तैल-नगरी बाकू में हमने देखा एक अजरबैजानी युवती ने एक कला समारोह में भारतीय ढंग से साड़ी पहन कर, माथे पर लाल टीका लगा कर, जूड़ा बाँध कर और जूड़े में फूल खोंस कर, बिलकुल भारतीय रूप धारण कर "बैजू बावरा" का गाना "गंगा की लहरों में जमुना का मिलना" तन्मय होकर गाया। उपस्थित दो हजार के लगभग लोग उस गायन के बाद जैसे बौरा उठे। कितनी थपोड़ियाँ बजीं, कितनी उस गायिका की दाद दी गई और न रुकने वाली तालियों द्वारा उसे कितनी बार स्टेज पर आकर बार-बार गाने के लिए मजबूर किया गया।

भारतीय फिल्में रूस में बड़ी सफल रही हैं। वहाँ कला प्रेम समूह की चीज़ है और शायद ही कोई रूसी मिला जिसने "आवारा" या "दो बीघा जमीन" न देखी हो। फिल्मी गाने इतने प्रिय हैं कि केन्द्रीय एशियाई समाजवादी गणतन्त्रों में भारतीय फिल्मी संगीत को सुनाने वाला कोलम्बो सीलोन रेडियो बहुत सुना जाता है। लता मंगेशकर, मन्ना डे, आशा भोंसले, इत्यादि के नाम से यहाँ लोग सुपरिचित हैं।

भारतीय नृत्य देख कर तो रूसी सचमुच में तन्मय हो जाता है। उनका भी नृत्य है, उनका बैले सुप्रसिद्ध है। फिर भी भारतीय नृत्य कला की अपनी विशेषता है। विश्व-युवक समारोह के पूरे पक्ष में जहाँ कहीं भारतीय नृत्यों का प्रदर्शन हुआ, रूस्की उछल पड़े। और यह नृत्य प्रदर्शन एक नहीं, अनेक जगह, अनेक थियेटरों में, अनेक चौराहों और पार्कों में हुआ—आखिर प्रतिदिन तीन सौ से ऊपर कार्यक्रम विश्व युवक समारोह के पूरे पन्द्रह दिन सारे मास्को में होते रहे। देश-देशान्तर की टोलियाँ थीं, बहुत देशों की टोलियाँ पूरी तैयारी से, सरकारी सहायता से उच्च निर्देशन से युक्त होकर

आई थीं, और सब ही अपने-अपने कार्यक्रमों को सफल बनाने के लिए, दर्शकों की थपोड़ियाँ और दाद पाने के लिए भरसक प्रयत्न करते थे। भारतीय नृत्य टोलियाँ निश्चय ही श्रेष्ठ थीं पर सम्भवतः उन्हें सर्वश्रेष्ठ नहीं कहा जा सकता। फिर भी चाहे गुजराती ग्रुप ने गर्बा नृत्य दिखाया, या कलकत्ते के रिनेसाँ ग्रुप ने कोई अपना काम दिखाया, या त्रिवांकुर-बहिनों—रागिनी पद्मिनी ने भारत-नाट्यम् का प्रदर्शन किया—उनका जो सत्कार हुआ, उपस्थित दर्शकों ने जो प्रसन्नता प्रदर्शित की, उनकी जो थपोड़ियाँ बजीं, वे कुछ खास थीं, उनमें एक खास गरमाहट थी, उनमें एक विशेष स्नेह था।

प्रत्येक देश की कला के विस्तृत एवं सम्पूर्ण प्रदर्शन के लिए किसी खास थियेटर में प्रोग्राम होता था। उसे वहाँ गालानाइट कहते थे। सात अगस्त की रात को भारतीय गालानाइट थी। हाल में तीन हजार से कुछ कम दर्शकों की जगह थी। टिकटों के लिए मास्को में होड़ मच गई। कितने ही मायूस हुए। और हाल खचाखच भर गया। सोवियत प्रेसीडियम के कुछ सदस्य भारतीय गालानाइट देखने आए और इस प्रकार रूसी ढंगों के मुताबिक भारतीयों को बड़ा सम्मान प्रदान किया। हँसते, मुस्कराते रूस्की बैठे थे। गुजराती गर्बा नृत्य हुआ, पंजाबी भंगड़ा हुआ, कत्थक ढंग का मुगल बादशाह के दरबार का नृत्य था, फिर गाने थे, बंग देश के मछली पकड़ने वाले नाविक का दर्दभरा एक गायन था, रवीन्द्र संगीत था, फिर रागिनी पद्मिनी का भरतनाट्यम् था, और एक मयूर नृत्य था। रूस्कियों की वह भीड़ थी और हम अनेक भारतीय वहाँ थे। बलराज साहनी प्रत्येक कार्यक्रम के पूर्व उसका परिचय देते थे और रूस की एक सर्वश्रेष्ठ अभिनेत्री उसका रूसी भाषा में अनुवाद करती थी। प्रत्येक कार्यक्रम के बाद रूस्की कितना खुश होता

था, कितनी थपोड़ियाँ बजती थीं। और हम भारतीयों में से बहुत से स्टेज को न देखते थे, बल्कि रूस्कियों का चेहरा देखते थे। रूसी नर-नारी भारतीयों का नृत्य देखते थे और हम देखने वालों की नज़र देख रहे थे।

और हमको गर्व हुआ, हमको अपने भारतीय कलाकारों पर गर्व हुआ, हमको अपनी भारत भूमि पर गर्व हुआ। अपने देश से हजारों-हजारों मील दूर भारतीयों की यह शान, यह आदर, उनकी कला का इतना आकर्षण और विशाल देश के महान् नागरिकों का यह प्यार। हमने जीवन धन्य समझा।

थियेटर में बैठा रूस्की तो बौरा गया था। रूसी दर्शकों का ताली पीटने का ढंग निराला है। पहले तो तालियों की गड़गड़ाहट होती है। फिर वे वन्स मोर या पुनर्बार किसी को बुलाना चाहते हैं तो ऐसा कहते नहीं। तब एक ताल और सम पर पट्ट-पट्ट सारे हाल में ताली बजती है। वह ज़ोरदार और और ज़ोरदार होती जाती है। कलाकार जब तक पुनर्बार स्टेज पर नहीं आता यह ताल और सम की पट्ट-पट्ट ताली रुकती नहीं। और कलाकार को आना पड़ता है। रागिनी-पद्मिनी कितनी बार बुलाई गईं। मयूर नृत्य वाला कलाकार कितनी बार बुलाया गया। और जब रूस्की दर्शक बहुत प्रसन्न होता है तो उसके गले से एक प्रकार की होऽऽऽऽ जैसी आवाज निकलती है, हाल को कम्पायमान कर देने वाली। और कितनी ही बार हाल में प्रसन्न रूस्कियों ने इस प्रकार इण्डुस्कियों को दाद दी।

तो "इण्डुस्की लुवलू" (हम हिन्दुस्तानी को प्यार करते हैं।) यह हमने सर्वत्र रूस्कियों से सुना। हम बराबर सोचते रहे आखिर क्या कारण है कि हिन्दुस्तानी रूस में इतना

प्यारा हो गया। एक भारतीय ने एक रूसी से यह प्रश्न किया। उसने कहा तुम लोग शराब नहीं पीते हो, तुम्हारी स्त्रियाँ बाल नहीं कटवाती हैं, तुम विवाह करने के बाद आजीवन निभाते हो, तलाक-वलाक का झगड़ा नहीं रहता, तुम बड़े सीधे-सादे और सरल होते हो, तुम्हारी स्त्रियाँ बहुत ही सुन्दर होती हैं, उनकी साड़ी और माथे की तिकुली हमको बहुत अच्छी लगती है, तुम्हारे गाने अच्छे होते हैं, वगैरह वगैरह। मास्को में ही किसी स्थान पर कार्य करते बहुत वर्षों से रहने वाले एक भारतीय ने बताया जब वे किसी दूकान पर शराब की बोतल खरीदने गए तो दूकानदार पति ने पत्नी से कहा : "यह इण्डुस्की भी जब हम रूस्कियों के बीच आता है तो हमारी ही तरह खराब हो जाता है।"

हमको प्रसन्नता हुई कि हमारे देश की इन परम्परागत बातों और तौर-तरीकों का रूस वालों को ज्ञान है, और वे उसे पसन्द करते हैं। पर यही क्या, जिस प्यार के समुद्र में भारतीय वहाँ सर्वत्र डुबोया जाता है, उसका पर्याप्त कारण है ? हम रूस के महान् उपन्यासकार दोस्तोवस्की का एक उपन्यास पढ़ रहे थे : "अपमानित और घायल।" एक रूसी चरित्र का वर्णन करते हुए लेखक कहता है : "निकलोई सर्गेविच, उनके खिलाफ़ भले ही कुछ कहे, उन बड़े दयावान् और सरल प्रेमियों में थे जो हमारे रूस देश में इतने आकर्षक होते हैं, और ऐसे ही लोग, एक बार यदि वे किसी से प्यार करने लगें (कुछ मामलों में भगवान् ही जाने क्यों), तो दिलो जान से फिदा हो जाते हैं, और कभी-कभी तो उनका स्नेह हास्यास्पद सीमाओं तक पहुँच जाता है।"

निःसन्देह रूस्की भावुक है, बड़ा भावुक और दयावान् तो है ही, और सच में रूस्की यदि किसी का दोस्त बना तो बना। तब

यह तो समझ में आया कि यदि रूस्की इण्डुस्की का दोस्त हुआ तो अपनी पूरी भावुकता और दिल की सच्चाई के साथ हुआ। फिर भी प्रश्न बना ही रहा यह दोस्ती हुई कैसे ?

उत्तर मिलने में देर न लगी। सोवियत संघ अब चालीस वर्ष का है। चालीस वर्ष से उस देश के नागरिक को यही शिक्षा दी गई है कि साम्राज्यवाद ही रूस का सबसे बड़ा दुश्मन है, यही साम्राज्यवाद संसार के कोटि-कोटि मानवों का औपनिवेशिक दमन करता है, संसार के सब दलित पीड़ित मानवों का और रूस की जनता का संघर्ष एक ही है, सब पीड़ित दलित देश रूस्कियों के मित्र हैं, रूस उनका सहायक है। यह ज्ञान रूस के प्रत्येक नागरिक को है और उस नाते ब्रिटिश साम्राज्यवाद से संघर्ष कर स्वतन्त्र होने वाला भारतीय तो उनका मित्र है ही।

पर कुछ और हो गया इन्हीं वर्षों में। नेहरूजी रूस गये। रूस में उनका अद्‌भुत, अपूर्व स्वागत हुआ। रूस्की जनता ने हमारे राष्ट्रीय नेता के लिए अपना कलेजा बिछा दिया। और नेहरूजी ने रूस देश का नया समाजवादी मानव देखा। वे चले तो कहते आए "मैं अपने हृदय का एक टुकड़ा यहाँ छोड़ कर जा रहा हूँ।" ऐसा शक्तिवान् था उस गोरे देश का गोरा प्यार। और नेहरूजी की रूस यात्रा का चलचित्र भारत के कोने-कोने में देखा गया। नेहरू-जी ने रूस्की मानव पर गहरा प्रभाव डाला। रूसी ने नेहरू के द्वारा भारत को पहचाना। रूस्की जब "इण्डुस्की लुवलू" कहता है तो साथ ही "नेहरू लुवलू" भी कहता है।

और फिर रूस के नेता ख्रुश्चेव और बुलगानिन भारत आए। दिल्ली के रामलीला मैदान में सोवियत नेताओं के स्वागतार्थ एकत्रित दस लाख के जन-समूह के सम्मुख नेहरूजी ने कहा, "उस

दिन हिमाचल की दीवारें ढह गईं। शताब्दियों से पड़ोसी, फिर भी दूर रूस देश और हमारे देश के बीच की दीवार टूटी, दोनों राष्ट्र स्नेहपाश में जुड़ गए। यह इतिहास का एक ज़रा गहरा डग था। और फिर रूसी नेता भारत घूमे। उन्होंने भारतीय मानव देखा। हमारे कोटि-कोटि देशवासियों ने उनका स्वागत किया। नेहरूजी के रूसी-स्वागत के आभार से दबे स्नेही भारतीय मानव ने रूस्की नेताओं का चौगुना स्वागत किया। कलकत्ते में तीस लाख का जन-समूह आया, इतिहास में अभूतपूर्व। इस स्नेह-सागर में ख्रुश्चेव और बुलगानिन डूब गये। यह अद्भुत था, अपेक्षा से परे था, अनोखा, अलौकिक था। लौटकर बुलगानिन ने रूसी सुप्रीम सोवियत के सन्मुख कलकत्ते की सभा का वर्णन करते हुए कहा : "हमको मनुष्यों के सिरों का समुद्र दिखा।"

इस यात्रा का भी चित्र बना। और रूस के बच्चे-बच्चे ने अपने नेताओं की भारत-यात्रा का चलचित्र देखा। हमको कोई रूसी न मिला जिसने वह चित्र न देखा हो। शहरों में और कलेक्टिव फार्मों में और सर्वत्र रूस्कियों ने देखा कि इण्डुस्कियों का क्या कलेजा है, किस कलेजे से उन्होंने उनके नेताओं का स्वागत किया। और सच मानिए, सिनेमा हालों में, मास्को में, लेनिनग्राड में, बाकू में, कीव में, जहाँ भी यह चित्र दिखाया गया, रूस्की बैठे रोते रहे, सारा हाल रोता था। चलचित्र समाप्त होने पर लोग पाँच मिनिट सीटों पर बैठ आँसू पोंछते, अपने को संभालते, तब निकलते।

रूसियों ने इन चित्रों में हमारे लाखों लाख काले, नंगे, हठीले मानव देखे, उनकी गरीबी देखी, फिर उनकी चमकती आँखें देखीं, उनका सरल मुख देखा, उनकी सिधाई और सादगी देखी। उनके स्वागत की गरमाहट को महसूस किया। उनको लगा – हमारा यह

प्यारा रूस देश है, हमारी यह प्यारी-प्यारी सोवियत भूमि है, हम यहाँ अपना जीवन व्यतीत करते रहते हैं, पर पूरा साम्राज्यवादी संसार है, पूँजीवादी देश हैं, हमको, हमारे देश को गालियाँ देते हैं, बुराई करते हैं। हमें विनष्ट करना चाहते हैं। पर यह देखो, यह भी एक देश है, कितना सरल, कितना सीधा और यहाँ रूसी के लिए कितना स्नेह है, रूस का कितना सम्मान है।

बस वह मोहित हो गया। निकोलई सर्गेविच की तरह रूस्की इण्डुस्की पर दिलोजान से फिदा है। और आज के इस संसार में इस दोस्ती का बड़ा मूल्य है। रूस्कियों की दोस्ती, उनकी सद्भावना हमारी धरोहर है। वह महान् देश है, बड़ा बलवान्, बड़े साधन वाला। हमको भारत की उन्नति करना है। हमको नया भारत बनाना है। हम सबसे दोस्ती चाहते हैं। हम सब के मित्र हैं। हमको मित्रों की ज़रूरत है। और रूस्की मानवों के हृदयों में हम भारतीयों के लिए बड़ा स्थान है। इस मित्रता की रक्षा करना, इसे सतत और गहरा बनाना, दृढ़ बनाना हमारा कर्त्तव्य है। इस मित्रता पर आघात करने वाला भारत का हितैषी नहीं हो सकता।

दिल्ली-ताशकन्त

रूस्की के देश के लिए हम जुलाई मास में चले थे। यात्रा के पहले दौर में हम दिल्ली से काबुल गये। अफ़गानिस्तान की आर्यन हवाई कम्पनी का वह हवाई जहाज था। दिल्ली से उड़ने के तीन-चार घण्टे बाद हमने सिन्धु नदी को पार किया।

सिन्धु को पार कर प्लेन कंधार की ओर आमुख हुआ। शीघ्र ही सुलेमान पर्वत पर हमारा जहाज उड़ रहा था, करीब बारह हज़ार फीट की ऊँचाई पर। वहाँ पर्वत शृंखला की ऊँचाई लगभग नौ हज़ार फीट थी। नीचे घोरम-घोर पहाड़ थे, ठठ्ठ के ठठ्ठ ऊबड़-खाबड़, ऊपर-नीचे और दूर-दूर तक निर्जन, बिलकुल निर्जन प्रदेश।

सच में प्रकृति का वह विकराल रूप था। उस भयावह पहाड़ी खंखाड़ में खुश्की थी, घोर खुश्की, लगता था कि जैसे विशाल पत्थरों के चकत्ते के चकत्ते एक के ऊपर एक चिपका कर रख दिए गए हों और उठते-चढ़ते उन चकत्तों में कहीं भी घास, लेशमात्र हरियाली नहीं थी। सूखेपन की वह सीमा थी। लगा कि जैसे वहाँ कभी एक बूँद जल नहीं गिरता। लगा कि वह धरित्री वारिद के लिए तरस-तरस कर ही इतनी शुष्क, इतनी निर्मम, इतनी भयावह हो गई थी।

बीच में उठती-चढ़ती वह पहाड़ी शृंखला खत्म हो गई और फिर सपाट भूमि दिखी, सूर्य से तपी हुई लाल-लाल रंग वाली। और वह सपाट भी वैसा ही खुश्क था। और सहसा उसी सपाट खंखाड़ से समानान्तर दो ऊँचे काली-काली चोटी वाले नुकीले पर्वत उमड़ आए। नग्न पृथ्वी के वह निराले ठाठ थे। बड़ी रोबदार वह

समानान्तर काली चोटियाँ थीं, और फिर तो झुण्ड की झुण्ड दिखाई पड़ीं—नुकीली, उतरती-चढ़ती, मिलती-बिछुड़ती वह विचित्र चोटियाँ।

और फिर कंधार आया। बड़ी देर बाद कुछ हरे-हरे खेत दिखे। फिर गाँव दिखे, कुछ काफ़ी सघन बस्ती वाले। गुम्बददार वे मकान थे, और हर मकान एक पतली मिट्टी की छाल दीवारी से घिरा था। सम्भवतः इसी प्रकार उस भयावह प्रकृति के बीच रहने वाले वहाँ चलने वाले प्रलयंकर झंझावात से अपनी रक्षा करते हैं। हरियाली बढ़ती गई, बस्ती भी बढ़ती दिखी और फिर कंधार हवाई अड्डे पर जहाज़ उतरा।

चारों ओर पहाड़ियों से घिरे एक बड़े सपाट में कंधार हवाई अड्डा था। कंधार जिसका नाम बहुत सुना था, कभी यह पूरा देश ही गांधार कहा जाता था और यहीं की गांधारी कौरवों की माँ थी। कंधारी अनार भी भारतीय खूब जानते हैं। वह छोटा-सा हवाई अड्डा था। कहीं से एक अमरीकी हवाई जहाज भी आया था, उसके काफ़ी यात्री, कुछ फौज़ी पोशाक में अड्डे के विश्रामालय में बैठे थे। कराची को जा रहे थे। काफ़ी गर्मी में भी कुछ अफ़गानी बुज़ुर्ग लम्बा चोगा पहने बैठे माला फेर रहे थे। और भी काफ़ी अफ़-गानी थे, पर देश की गरीबी उनके वस्त्रों से, उनके चेहरे से टपकती थी।

पौन घण्टे बाद प्लेन काबुल के लिए उड़ा। उड़ने के थोड़ी ही देर बाद हरियाली और बस्ती पीछे रह गई और वही शुष्क भयावह पहाड़ी खंखाड़ नीचे दिखा। लगा कि जैसे यह पृथ्वी अभिशप्त है, जैसे इस के भाग्य में जल के लिए तरसना बदा है। और उस सूखे भयावह खँखाड़ को देख हमने सोचा हमारा शस्य-श्यामल भारत देश कितना

भाग्यवान है। विशाल मैदान बनाकर, असंख्य नदियों को प्रवाहित कर प्रकृति ने हमारे देश पर कितनी कृपा बिखेरी है।

चार बजे दिन में हम काबुल पहुँचे। उस रात वहीं रहना था। उस दिन हम काबुल शहर घूमे। छोटा-सा शहर है। हिन्दी समझने-बोलने वाले काफ़ी मिल जाते हैं। चाय की दूकानों में, रेस्तोराओं में भारतीय फ़िल्मी गानों के रेकार्ड खूब बज रहे थे। काफ़ी पुराना ऐतिहासिक नगर है वह। पर शहर की एक झलक से ही गरीबी और पिछड़ेपन का अन्दाज लग गया। स्त्रियों के लिए पर्दा प्रथा बड़ी सख्त है। कोई अफ़गानी महिला बिना बुरका पहने सड़क पर नहीं निकलती। स्त्रियों के लिए सिनेमा घर अलग हैं। जहाँ तमाम मर्द जाते हैं, उन सिनेमा घरों में स्त्रियाँ नहीं जातीं। देश में कोई जनतान्त्रिक प्रणाली नहीं है, कोई संसदीय संस्था नहीं है। कभी चुनाव नहीं होता। सत्ता राजघरानों, मुल्लाओं और कबायली मुखियाओं के हाथ है।

काबुल हवाई अड्डे पर काबुल-स्थित रूसी दूतावास के व्यक्तियों ने मास्को विश्व युवक-समारोह में सम्मिलित होने के लिए जाने वाली हमारी भारतीय टुकड़ी का अभिवादन किया। इनकी शिष्टता और सज्जनता सराहनीय थी। रूसी मानव की पहली झलक ही अच्छी लगी। और दूसरे दिन सुबह साढ़े नौ पर हम एक रूसी इल्यूशिन हवाई जहाज पर काबुल से ताशकन्त के लिए रवाना हुए। उड़ने के दस मिनिट बाद ही प्लेन की रूसी कर्मचारिणी ने सबको आक्सीजन ट्यूब लगा दिया। कहा उसने कि हिमाचल शृंखला के बड़े ऊंचे पर्वतों के ऊपर उड़ना होगा, आक्सीजन ट्यूब न होने से साँस लेने में दिक्कत होगी।

प्लेन तरमेज़ नामक रूसी शहर की ओर उड़ रहा था।

अफ़गानिस्तान रूस सरहद पर वह पहला रूसी शहर है। उड़ने के आध घण्टे बाद ही उत्तुंग हिमाचल शृंग दिखा। हिमाच्छादित हिमाचल का वह विकट रूप था, प्रकृति का वह घटाटोप हम आँखें भर-भर कर देख रहे थे। ऊबड़-खाबड़ गगन में उठती हुई बर्फ से ढकी चोटियाँ थीं, और पहाड़ों की ढालों पर जो कुछ नालियां सी बनी थीं उनमें बर्फीली लकीर दिखती थी। शीघ्र ही हम सर्वोच्च शृंखला पार कर गये। पर्वत उतरने लगे। प्लेन से दूर-दूर तक उतरते पर्वतों का समूह दिखा।

उन उतरते पर्वतों को देख दिल्ली के रामलीला मैदान में रूसी नेताओं के स्वागत समारोह में नेहरू जी का वह कथन पुनः याद आया, "आज हिमाचल की दीवारें टूट गईं !" उस दिन फिर एक और भारतीय टुकड़ी हिमाचल की उन टूटी दीवारों को पारकर अपने मित्र रूस देश को जा रही थी। वह दुर्गम पृथ्वी थी, हज़ारों-हज़ारों वर्ष मानव उनसे पराजित पड़ा रहा, उनको पार न कर सका। पर अब नहीं ? मानव अजेय जो है। और अभी तो मानव की विजय-यात्रा चल ही रही है। मानव उन दुर्गम पंथों को अभी और भी जीतेगा, उनके कोख में जो खनिज होगा, धन होगा, उसको वह निकालेगा।

लगभग डेढ़ घण्टे की उड़ान के बाद अफ़गानिस्तान और रूस की हद बाँधने वाली आमू नदी आई। अफ़गानिस्तान खत्म हुआ, हम रूसी पृथ्वी पर उड़ने लगे। नीचे तरमेज़ नगर दिखा, काफ़ी बड़ा, पर प्लेन वहाँ न रुका। पता लगा कि हम सीधे ताशकन्त ही उतरेंगे। और तरमेज़ के कुछ ही देर बाद पहाड़ों की एक नयी शृंखला शुरू हो गई। काफ़ी ऊँचे वे पर्वत थे और हरियाली लिये हुए थे। पर्वतों की ऊँचाई चढ़ती गई और शीघ्र हम विकराल लगते

काले-काले भूधरों के ऊपर उड़ रहे थे। और कभी तो हमारा जहाज़ पहाड़ी चोटियों के बिलकुल बगल आ जाता था, जैसे हम पहाड़ी छज्जों के बगल में उड़ते हों। काले-काले भूधरों का वह नग्न रूप हमारे सन्मुख था, डरावना और अद्‌भुत।

और फिर हमको ऐतिहासिक समरकन्द शहर नीचे दिखा। समरकन्द नामक नदी के तट पर ही बसी यह विशाल नगरी दिखी। यानी अब हम सोवियत संघ के उजबेकिस्तान प्रदेश पर आगये थे। बोखारा, समरकन्द और ताशकन्त केन्द्रीय एशिया के यह प्राचीन सुप्रसिद्ध नगर इसी प्रदेश में हैं। भारत से व्यापार के मार्ग में यह थे, चीन और यूरोपीय व्यापार में भी उनका बड़ा महत्त्व था, और भारत पर उत्तर-पश्चिम से आक्रमण करने वाले अनेकानेक इसी मार्ग से गये थे। बाबर की मृत्यु समरकन्द में हुई थी।

वायुयान अब समतल मैदानों पर उड़ रहा था। नीचे विशाल खेत दिखे, बहुत बड़ी-बड़ी आराजियाँ थीं, साफ था कि यह रूस के सामूहिक खेतों की भूमि है। फसलें कट चुकी थीं और खेत सूखे पड़े थे। और इन विशाल खेतों के बीच सघन बसे ग्राम दिखाई पड़े। अपने देश में पाकिस्तानी इलाकों में हमने पिछले दिन छोटी-छोटी मेड़ों से घिरी हुई, खिलौनों के माफिक लगती हुई आराजियाँ देखी थीं और विशाल खेतों का वह दृश्य उससे सर्वथा भिन्न था। और हम सोच रहे थे, कि यह रूस का एशियाई हिस्सा है, मुस्लिम हिस्सा है, और अफ़गानिस्तान से लगे इस क्षेत्र में भी कभी कितनी गुरबत थी, कितना पिछड़ापन था, मुल्लाशाही का दबदबा था, सामन्तों के ठाठ थे। कितना कठिन था इन असरों को खत्म करना, धर्मान्धता को दूर करना, पर वह कार्य हुआ ही, जमाना ही वहाँ पलट गया।

और तब विशाल ताशकन्त शहर दिखा। दस लाख की उसकी आबादी है, प्लेन से ही अनुमान हो गया कि भव्य और विराट् यह नगरी है। बड़ा लम्बा-चौड़ा, फैला-फैला वह शहर लगा। और प्लेन नीचा होने लगा। प्लेन से ही हमको हवाई अड्डे पर भीड़ खड़ी दिखी, बहुत से झंडे दिखे।

और फिर हमारा जहाज़ हवाई अड्डे पर उतर गया। हम सोवियत संघ की भूमि पर आ गए। प्लेन रुकते ही एक रूसी महिला अन्दर आई, और उसने अपनी भाषा में कहा "सोवियत संघ में आपका स्वागत है।" फिर हम प्लेन से उतरे। बाहर लम्बा चौड़ा हवाई अड्डा दिखा, दर्जनों हवाई जहाज खड़े थे और विभिन्न देशों के सैकड़ों झंडे फहरा रहे थे। उजबेक और रूसी बालक बालिकाएँ बड़े इन्तजार में उतावले से खड़े थे और दौड़ कर उन्होंने प्रत्येक आगन्तुक को गुलदस्ता भेंट कर उनका स्वागत किया। फिर हमारा पासपोर्ट देखा गया। पर, महान् आश्चर्य, रूस देश में कोई कस्टम चेकअप नहीं होता। हर देश में विदेशी यात्रियों के सामान की छानबीन होती है, पर रूस देश में इसकी कोई परवाह ही नहीं दिखाई पड़ी।

पासपोर्ट जाँच के बाद हम हवाई अड्डे के बाहर आए। काफ़ी बड़ी भीड़ भारतीयों के स्वागत के लिए खड़ी थी। न्यूज़रील कैमरा वाले थे, रेडियो वाले थे, अख़बार नवीस थे। इण्डुस्की घेर लिए गए। अखबार वालों ने घेरा, रेडियो वालों ने घेरा, पर इनसे अधिक घेरा ताशकन्त के नागरिकों ने, वहाँ के युवकों ने। काफी लोग हिन्दी बोल रहे थे, पर इनमें उर्दू शब्दों का प्रचुर प्रयोग था। हवाई अड्डे के बाहर अच्छी खासी हलचल मची थी। रूसी स्वागत की गर्मी सबने महसूस की।

कैमरा वालों व पत्रकारों से पीछा छुड़ाना आसान न था। उनसे बचने पर उपस्थित जनता के उबलते स्नेह ने भारतीयों को घेर लिया। कुछ अंग्रेजी बोल लेते थे, कुछ हिन्दी बोलते थे और सब ही आगन्तुक ताशकन्त नागरिकों से घिर गये थे। स्पष्ट था कि सब भारतीयों पर स्नेह उड़ेलने को उत्सुक थे। एक घण्टे के बाद कहीं हम खड़ी बस पर पहुँच पाए। तब विशाल ताशकन्त की सड़कों पर चक्कर काट कर हम अपने निवास-स्थान पहुँचे। हमारी रूस यात्रा का पहला दिन इस प्रकार शुरू हुआ।

ताशकन्त में तीन दिन

ताशकन्त में हमको विद्यार्थियों के एक होस्टल में ठहराया गया। छुट्टी के दिन थे, विद्यार्थी सब चले गये थे। होस्टल सुन्दर था, कमरे अच्छे हवादार थे, काफी सजावट थी, स्नानादि की सुविधायें श्रेष्ठ थीं। वस्तुतः वह होस्टल नहीं, अच्छा मजे का होटल प्रतीत होता था। बरांडों में बढ़िया कार्पिट बिछा था। कपड़े धुल-वाने, बाल कटवाने इत्यादि इत्यादि, सबका ही सुन्दर प्रबन्ध था। इण्डुस्कियों की खातिर में कहीं भी कोई कमी नहीं थी। वे जानते थे कि भारतीयों में काफ़ी शाकाहारी होते हैं, और इसकी जाँच उन्होंने शुरू में ही कर ली।

पता लगा कि हमको तीन दिन ताशकन्त में रहना होगा। मास्को विश्व युवक-समारोह में अभी आठ-दस दिन की देरी थी। उजबेकिस्तान की युवक कमेटी स्वागत भार उठा रही थी, और उसने ही भारतीय अतिथियों को तीन दिन ताशकन्त रखने का निर्णय किया। तीन दिन का भरापूरा कार्यक्रम था। तीन दिन के अन्दर हमको ताशकन्त शहर के कई स्थानों पर ले जाया गया, वहाँ का सांस्कृतिक भवन, अजायबघर, सामूहिक खेत, पायनियर हाउस, सांस्कृतिक पार्क इत्यादि, इत्यादि। इनके अलावा ताशकन्त के थियेटरों में हमको उजबेक नाटक व अन्य सांस्कृतिक कार्यक्रम दिखलाए गये।

उजबेकिस्तान केन्द्रीय एशिया के विशाल प्रांगण के बिल्कुल केन्द्र में है। इतिहास में सुप्रसिद्ध बोखारा, समरकंद और ताशकन्त यहीं हैं। यह नगर मध्य युग में बड़े समृद्ध व्यापार एवं सांस्कृतिक केन्द्र थे। यहाँ की भवन-निर्माण कला और विशेष रूप से यहाँ की

पच्चीकारी का प्रभाव दूर-दूर तक पड़ा है। संसार के प्राचीन और मध्य युगीन इतिहास में केन्द्रीय एशिया से मानवों का झुण्ड का झुण्ड जो यूरोप या भारत गया, यहां से गुजरा, और यहाँ का प्रभाव लेकर गया। उज़बेक प्राचीन लोग हैं। वहाँ के अजायबघर में वहीं पाया जाने वाला तीस हज़ार वर्ष पूर्व के मानव का अवशेष है। और उनको अपने पर, अपने इतिहास पर गर्व है। पर रूसी ज़ारशाही की सत्ता के स्थापित होने पर इस प्रदेश का बड़ा पतन हुआ, वह बहुत पिछड़ गया। किसानों का जबरदस्त सामन्ती शोषण होता था, शिक्षा का कोई प्रबन्ध नहीं था, दुःख और दारिद्रय सर्वत्र व्याप्त था। स्त्रियाँ सख्त पर्दे में रखी जाती थीं। और मुल्लाओं का बोल-बाला था। वस्तुतः वह कितने गरीब और पिछड़े थे, इसका चित्र आज भी उनके निकट पड़ोसी अफ़गानिस्तान में आप देख सकते हैं।

पर अब वहाँ की दुनियाँ बदल चुकी है। अब वहाँ कोई अशिक्षित नहीं है। शिक्षा का प्रचुर प्रबन्ध है। पर्दा प्रथा अब नहीं है, स्त्रियाँ मर्द के बराबर दर्जे पर हैं, समाज में उनसे कन्धे से कन्धा मिला कर कार्य करती हैं। भुखमरी खत्म हो चुकी है। हर एक के पास रहने, पहनने और खाने को है, और बृहद् औद्योगिक विकास हो चुका है।

ऐसी स्थिति में स्वभावतः इन प्राचीन मानवों का पुराना कला-प्रेम खूब उभरा है। इन्होंने ताशकन्त के एक केन्द्र-स्थल में अपना विशाल और भव्य सांस्कृतिक भवन बनाया है। भवन के अन्दर एक बोखारा हाल है, एक समरकन्द हाल है। इनकी दीवारों पर बोखारा और समरकन्द की प्राचीन पच्चीकारी का आश्चर्यजनक उदाहरण पेश किया गया है। इसी भवन में एक विशाल थियेटर हाल है। फिर उजबेकिस्तान के सुप्रसिद्ध कलाकारों एवं साहित्यकारों की

मूर्तियाँ हैं, उनका वर्णन है। महान् रूसी क्रान्ति में उजबेकिस्तान के योग को विविध रूप से दिखाया गया है। प्रधान मन्त्री नेहरू जी इस भवन में जा चुके हैं।

और कई कार्यक्रम निभाना था सो हम केवल डेढ़ घण्टा ही सांस्कृतिक भवन में दे पाये। डेढ़ घण्टे बाद जब हम बाहर आए तो विचित्र दृश्य देखा। हमारी बस बाहर खड़ी थी। हमको उसी पर बैठकर अन्यत्र जाना था। पर यह क्या? हमारी बस बाहर एकत्रित मनुष्यों की भीड़ के पीछे छिप गई थी। जाने कैसे लोग जान गये कि भवन के अन्दर इन्डुस्की गए हैं। और इण्डुस्कियों को देखने हजारों आदमी एकत्रित हो गये। भारतीय टुकड़ी बाहर निकली तो सबों ने जोर की ताली बजाई। और इण्डुस्की घेर लिया गया। सब ही अपना स्नेह दिखाना-जताना चाहते थे, कोई टूटी-फूटी अंग्रेजी या हिन्दी में सवाल करता था। कुछ फूल भेंट करते थे। कुछ अपने कोट पर लगा बैज निकाल भारतीय को भेंट कर जोर से हाथ मिलाते थे। कितनों ने ही नेहरू, या राज कपूर, या लता मंगेशकर, या मन्ना डे का नाम लेकर ही भारत से अपना सामीप्य प्रदर्शित किया।

हम ताज्जुब में थे। इन लोगों को क्या हो गया है, हिन्दुस्तानी इनको इतना अच्छा क्यों लगता है? हमको एक मिनिट के लिए भी सन्देह न था कि यह ऊपरी दिखावटी प्रदर्शन है। हम यह इस कारण कहने पर बाध्य हैं कि संसार में रूस निन्दकों की टोली कहती रहती है कि वहाँ तो विदेशियों के आगे सब दिखावटी चीजें आती हैं। हमारे नेत्रों के सामने जो खुले चेहरे थे, जो उबलता स्नेह था, जो हृदय की गर्मी थी, जो दिली सच्चाई थी, उससे इन्कार नहीं किया जा सकता।

बमुश्किल तमाम हम बस पर पहुँचे, और बस चल दी। दस लाख की बस्ती के ताशकन्त में हम तीन दिन बहुत घूमे। साफ़-सुथरा शहर है, कायदे से बसा हुआ। अधिकांश भाग सन् १९१७ की क्रान्ति के बाद बना है, पर हमने प्राचीन ताशकन्त भी देखा। वहाँ कच्चे एकमंजिले मकान थे, गलियां थीं, मकानों के दरवाजों पर माँएं बच्चों के साथ बैठी थीं, और दृश्य पूरा भारत के किसी नगर जैसा था! सर्वत्र हमको गम्भीर और आत्मसम्मानी जचते नर और नारी सड़कों पर तेज़ी से अपने-अपने काम से जाते दिखे। ताशकन्त में विशाल चौड़ी सड़कें हैं, बड़े-बड़े चौराहे हैं, सड़कों पर खूब रोशनी है और खूब पेड़ हैं। पोस्टरों और साइनबोर्डों की भरमार है।

शाम को हमें सांस्कृतिक पार्क में ले जाया गया। बड़ा-सा वह सुन्दर उद्यान है, फव्वारे हैं, सजावट है, खूब रोशनी है। और वहाँ झुण्ड के झुण्ड उजबेक और रूसी थे। बच्चे थे, माँएँ थीं, पर अधिकांश वहाँ युवक थे, उनके झुण्ड के झुण्ड। एक केन्द्रीय स्थल पर स्टेज बना था और वहाँ गायन और नृत्य हो रहा था। अजब छटा थी, अजब समाँ था, सर्वत्र सुखी, प्रसन्न, सन्तुष्ट, स्वस्थ चेहरे दिखते थे। और भारतीयों के लिए मुस्कराहट थी, नेत्रों में मैत्री भाव था। हमारे बाईस व्यक्तियों के भारतीय दल में बम्बई के सुप्रसिद्ध गुजरात गर्बा मण्डल की बहनें थीं। यह मण्डल अपने गर्बा नृत्य के लिए तथा अन्य कलाकृत्यों के लिए प्रधान मन्त्री द्वारा प्रशंसित हो चुका है। पार्क में इनको घेर लिया गया। उनको अपना नृत्य प्रदर्शन करने पर मजबूर किया गया। और कितने प्रसन्न हुए वहाँ एकत्रित चार पाँच हज़ार उज़बेक और रूसी, कितनी थपोड़ियाँ बजीं। फिर गायन हुआ। एक उज़बेक गायिका ने भारतीय फिल्मी गाने गाये।

और अन्त में इण्डुस्की टुकड़ी ने "जन-गन-मन" गाया जिसमें कई ताशकन्तियों ने योग दिया।

वह अद्‌भुत अनुभव था। ऐसी तेजी, ऐसा जीवन, ऐसा चिन्ता-विमुक्त उल्लास शायद ही कभी देखा हो। रूस्की की झलक हमको मिलती जाती थी, और सबही अनुभव अपने ढंग के नायाब ही होते थे।

रात हम एक उजबेक नाटक देखने गए। हाल खचाखच भरा था। भारतीयों के दाखिल होने पर सारे हाल के लोगों ने खड़े होकर जोरों से तालियाँ पीट कर उनका स्वागत किया। नाटक की कहानी का उजबेकिस्तान के प्राचीन इतिहास से सम्बन्ध था, जिसमें आततायी राजा की पुत्री के प्रेमी युवक ने विद्रोह का झंडा उठाया था। रंगमंच कला बहुत उच्चकोटि की थी, सीन सीनरियों का बदलना, वर्षा होना, बरफ़ गिरना, सब ही खूबी के साथ दिखाया गया। पात्रों का अभिनय भी सराहनीय था।

नाटक के मध्य इण्टरवल में कई अमरीकी नागरिक मिले। हमको थोड़ा आश्चर्य हुआ कि रूस के इतने अन्दर केन्द्रीय एशिया के रूस तक यह लोग कैसे आगये। सोवियत संघ और संयुक्त-राज्य अमरीका की जो ठंडी लड़ाई चलती रहती है, और अमरीका में रूस के विरुद्ध जैसा वातावरण है, उसे देखते हुए ऐसा लगना स्वाभाविक ही था। एक सज्जन थे वाशिंगटन डी० सी० के मिस्टर लारेन्स। श्रीमती लारेन्स भी साथ थीं। कानसास सिटी के भी एक महोदय अपनी श्रीमती के साथ थे। श्री लारेन्स बुजुर्ग आदमी हैं, काफ़ी अनुभवी और सज्जन प्रतीत होते थे। उन्होंने कहा कि वे सामान्य यात्री के रूप में घूम रहे हैं। उनको अमरीका में पासपोर्ट मिल गया और रूस का वीसा मिल गया। उन्होंने यह भी कहा कि विदेश यात्रा

को जाना अमरीकियों में बड़ा लोकप्रिय हो रहा है, और इधर काफ़ी अमरीकी रूस यात्रा को आने लगे हैं, उसकी सुविधा रहती है।

हमने मिस्टर लारेन्स से कहा कि आप लोगों को रूस के इतने अन्दरूनी भाग में घूमते देख कर हमको प्रसन्नता हुई। कारण हम भारतवासी शान्ति चाहते हैं, हमको अपने पिछड़े देश का जल्दी से विकास करना है। पर रूस और अमरीका की आए दिन तनातनी से हम चिन्तित रहते हैं। हम भारतीय चाहते हैं कि रूस व अमरीका में मित्रता रहे। कानसास सिटी के महानुभाव ने कहा कि हम अमरीकी भी संसार में शान्ति चाहते हैं। उन्होंने बताया कि इतनी दूर रूस में आने वाला कई वर्षों बाद यह प्रथम अमरीकी गुट है। मिस्टर लारेन्स ने बताया कि वे पिछली बार सन् १९३१ में ताशकन्त आए थे और तब और अब के बीच दुनिया ही बदल गई है!

दूसरे दिन हम ताशकन्त के ओर्दोनीकीज्दे जिले के स्टालिन सामूहिक खेत पर गए। रूस में सामूहिक खेतों के नामकरण, तथा नगरों इत्यादि के नामकरण में देश के नेताओं का नाम व्यवहार करने की बड़ी चाल है। ओर्दोनीकीज्दे सन् १९१७ की क्रान्ति के दिग्गज नेताओं में थे। लेनिन के सहयोगी थे, और क्रान्ति के कुछ वर्षों बाद ही उनकी मृत्यु हो गई थी। स्टालिन सामूहिक खेत ताशकन्त के निकट ही था। वहाँ के वयोवृद्ध अध्यक्ष नज़ीरुल्ला मल्लानोव ने हमारा स्वागत किया। सामूहिक खेत का रूसी नाम है कोलखोज। इस कोलखोज में ५०० कृषि-परिवार सम्मिलित थे और कुल संख्या २५०० थी। इन २५०० में से ७०० हृष्ट-पुष्ट पुरुष कोलखोज में परिश्रम करते थे। शेष बालक थे या युवक थे जो कालेजों और यूनीवर्सिटियों में अध्ययन कर रहे थे। कोलखोज के पास लगभग ५००० एकड़ भूमि है। वहां कपास की मुख्य पैदावार है, पर गेहूं

चावल, मक्का, आलू, अन्य सब्जियाँ, अँगूर, तरबूज व अन्य फल भी वे काफ़ी मिकदार में पैदा कर लेते हैं। इनके अलावा प्रत्येक परिवार के पास लगभग ढाई तीन एकड़ भूमि है जिस पर वह चाहे बाग लगाए, चाहे सब्जी बोये, या फल उगाए, जो चाहे सो करे। उसे इसकी भी स्वतन्त्रता है कि वह इस अपने निजी खेत की पैदावार को खुले बाजार में बेचे, पर लगभग सभी उसका उपभोग स्वयं ही करते हैं।

कोलखोज में काम करने वाले को वर्ष में औसतन १२,००० रूबल की आय होती है। बहुधा स्त्रियाँ भी कार्य करती हैं तो औसतन एक परिवार को २५,००० रूबल के लगभग मिल जाता है। इसके अलावा अनाज भी दिगा जाता है। एक व्यक्ति को वर्ष में लगभग ढाई टन गेहूँ। किसान को सरकार को सीधे कोई कर नहीं देना पड़ता। कोलखोज की ओर से कुल आय का छः या सात प्रतिशत सरकार को सीधे टैक्स के रूप में दे दिया जाता है। कोलखोज के पास आठ बड़े ट्रैक्टर हैं, उसकी अपनी पशुशाला है जिसमें १६० गाय हैं और ४०० बैल हैं। कोलखोज का अपना स्कूल भी है जहाँ १,२०० बच्चे पढ़ते हैं। उसकी अपनी नाट्यशाला और सिनेमाघर हैं, जहाँ बहुधा कार्यक्रम रहा करता है। सरकार को कुल आय का छः या सात प्रतिशत कर के रूप में देने के अलावा कोलखोज स्वयं निश्चित करता है कि कुल पैदावार का कितना हिस्सा वह सरकार के हाथ बेचे।

हम किसानों के घर भी देखने गये। प्रत्येक किसान का घर उसकी निजी जमीन के बीच में था। बीच में घर और चारों तरफ छोटी-सी हरी-भरी वाटिका। हमको राजर्षि टंडनजी की वाटिका-गृह की कल्पना याद आ गई। और साफ़ सुथरे आरामदेह घर थे।

तीन या चार कमरे थे। स्नानागार था, रसोईघर था। हर घर में हमको रेडियो और टेलीविजन दिखा। किसी ने कहा कि हमको चुनिन्दा घर दिखाये जाते हैं। हम नहीं कह सकते, पर हमसे नजोरुल्ला मल्लानोव ने अवश्य कहा था कि आप चाहे जिस घर में जा सकते हैं।

जो भी हो, किसानों की समृद्धि और खुशहाली में सन्देह नहीं किया जा सकता। हम कोलखोज के मुख्य कार्यालय के सुन्दर हाल में बैठे जब अध्यक्ष से बातें कर रहे थे तो ७० वर्ष के कुर्बाश अता और ७३ वर्ष के यूसुफ़ अता भी आ गये। पक्की उनकी उम्र थी। पक्के वे धर्मभीरू मुस्लिम थे, दाढ़ी मूँछ, शक़ल सबसे ठेठ इस्लाम अनुयायी लगने वाले। खुश-खुश वे बैठे थे। उनसे सवाल जवाब हुए उनका सन्तोष और उनकी प्रसन्नता स्पष्ट थी। कुछ घूँघट काढ़ बुढ़ियाँ भी इण्डुस्कियों को झाँकने आईं, शर्मातीं, झपकती, बिलकुल अपनी भारतीय माँओं की तरह। उनके भी जीवन से सन्तोष झलकता था।

फिर हमको कोलखोज के फील्ड आफिस ले जाया गया। ऊँचे-ऊँचे सघन वृक्षों की छाया में बनी एक सुन्दर इमारत थी, जहाँ यह दफ्तर था और चारों ओर खेत थे। कोलखोज के कुछ लोग भी थे। कोलखोज की उज़बेक युवतियों और युवकों का सम्मिलित नृत्य हुआ, गायन हुआ। भारतीय दल ने भी नृत्य प्रदर्शन किया और गाने गाये। फिर वहीं सारे दल की दावत हुई। रूसी खूब खाता है और खूब खिलाता है, और घण्टों दावत चलती है। खाने के बाद फिर कुछ उजबेक गाने हुए। सारा वातावरण मैत्री और स्नेह से ओत-प्रोत था। कोलखोज अध्यक्ष नज़ीरुल्ला मल्लानोव ने कहा कि हमारी बड़ी ख्वाहिश थी कि भारतीय हमारे कोलखोज आवें और

हमको आज बहुत खुशी है। मल्लानोव का छलकता मित्र भाव, उनका सम्पूर्ण व्यवहार हृदय को पकड़ने वाला था। शाम हो रही थी, हम चले। उन्होंने गर्वा मण्डल को उज़बेक ढोल और मजीरा भेंट किया। वे गद्गद् हो गये। उन्होंने कहा : "नेहरू हमारे सोवियत संघ के बड़े मित्र हैं, हमारा भला चाहते हैं, हमारे आदरणीय हैं।" और उनका गला भर आया। भरे गले से उन्होंने कुछ कहा जो शायद बहुत स्पष्ट नहीं था। हमारे रूसी भाषान्तरकार ने बताया कि उन्होंने कुछ ऐसा कहा : "**नारोद** ही सब कुछ है, **नारोद** ही सब है, **नारोद** जो चाहेगा वही होगा।" रूसी भाषा में 'नारोद' के अर्थ हैं जनता।

भारतीयों की उस टुकड़ी के एक दल को उसी दिन रात रूस्की नारोद का अविस्मरणीय अनुभव हुआ। मुख्य टुकड़ी को छोड़कर कुछ भारतीय अकेले ताशकन्त में निकल पड़े। ट्राम पर बैठे और नगर के केन्द्र स्थल बोलशोई थियेटर के सामने पहुँच गए। भव्य वह थियेटर है और सामने अनेक रंगीन फव्वारे चलते हैं, बैठने को बेंचें हैं, फ़ूल फुलवाड़ी है और हज़ारों ताशकन्ती वहाँ घूमने-टहलने जाते हैं। और वे भारतीय तो भौचक्क रह गये, जो उन पर बीती उसकी उन्होंने कभी कल्पना न की होगी। हिन्दुस्तानी घिर गये बेतरह। छोटी-छोटी बच्चियाँ आईं। हिन्दुस्तानी अच्छा लगता है। "हिन्दी रूसी भाई-भाई" यह नारा वहाँ जनप्रिय है। प्रसन्नचित्त युवक-युवतियों ने यह नारा लगाया। नटाशा नामक एक सात-आठ वर्ष की बालिका आई। वह बस हिन्दुस्तानी के पास आना चाहती थी। विश्वविद्यालय की एक विद्यार्थिनी स्वेटलाना थी। उसने बड़े सवाल किए, हिन्दुस्तान के कौनसे प्रान्त से आते हैं, क्या करते हैं, वग़ैरह, वग़ैरह। उसने मास्को विश्वविद्यालय का एक बैज अपने वस्त्र से

निकाल कर एक भारतीय के कोट पर लगा दिया। जनस्नेह उमड़ा था, स्वतः और सच्चा। ताशकन्तिओं में उल्लास था, प्रसन्नता थी। उनके हृदय की मैत्री भावना स्पष्ट थी। सुन्दर भोले चेहरे थे, जीवन छलक रहा था।

एक रात बोलशोई थियेटर में गर्वा मण्डल का कार्यक्रम होना निश्चित हुआ। लगभग डेढ़ घण्टे का समय गर्वा मण्डल के लिए तय हुआ और इतना ही उज़बेकिस्तान के सांस्कृतिक प्रदर्शनों के लिए। हाल खचाखच भर गया। कार्यक्रम प्रारम्भ होने के पूर्व उज़बेकिस्तान सरकार के सांस्कृतिक विभाग के वजीरुल्ला नामक एक उच्च अधिकारी ने भारतीयों का स्वागत किया। उन्होंने पड़ौसी भारत से उज़बेकिस्तान के लोगों के प्राचीन सम्बन्ध की चर्चा की। उन्होंने कहा कि हमारी धमनियों में जिन पूर्वजों का रक्त बहता है उनमें से अनेकानेक भारत जाकर वहीं बस गये। भारत की महान् कला और संस्कृति की उन्होंने चर्चा की और उसके प्रति उज़बेकों का आभार प्रकट किया।

वज़ीरुल्ला की भावनाएँ उपस्थित जनता की भावनाएँ थीं यह साफ था। उनका भाषण संक्षिप्त था। पर प्रत्येक वाक्य का उपस्थित जनता हर्षध्वनि और करतल ध्वनि के साथ स्वागत करती थी। और फिर उज़बेक तथा भारतीय नृत्य और गायन हुआ। हमको लगा कि उनके नृत्य में भारतीय पुट है और उनको लगा कि हमारे नृत्य उज़बेकिस्तान के नृत्यों से मिलते हैं। उनको हमारे बाजे उनके जैसे लगे और हमको उनके बाजों की ध्वनि अपनी जैसी लगी। और खूब भाया भारतीय प्रदर्शन उनको, इसमें भी सन्देह नहीं।

अन्त में भारतीय प्रवक्ता ने बिदाई भाषण दिया। उन्होंने कहा

हमको ऐसा लगता ही नहीं कि हम अपने देश के बाहर हैं, यहाँ सब चीज हिन्दुस्तान जैसी है, यहाँ तक कि वज़ीरुल्ला का नाम भी हिन्दुस्तानी जैसा है। उनका इतना कहना था कि वह हाल गद्-गद् हो गया। बड़ी हर्षध्वनि निकली, बड़ी देर तक तालियाँ बजीं। फिर भारतीय प्रवक्ता ने कहा: "हम तीन दिन ताशकन्त रहे, मन होता है और रहें, यहाँ हमको जो स्नेह और प्यार सर्वत्र मिला उससे दूर होने में तकलीफ है। हम चले जायेंगे, पर हमारे दिल के टुकड़े यहाँ रहेंगे।"

भारतीय प्रवक्ता की भावनाएँ भारतीय टुकड़ी के प्रत्येक व्यक्ति की भावना थी।

इवान इवानोविच

इवान इवानोविच क्या मिले कि हमको कन्हैया भैया की याद आ गयी। आपके भी पड़ोसी होंगे, मुन्नूलाल या माधोप्रसाद, या ऐसे ही कोई नाम के, जैसे कि हमारे शहरी जीवन में मुहल्लों, कूचों और गलियों में पाए जाते हैं। यह भले, हँसमुख होते हैं, ज्यादातर हंसते और हंसाते रहने का प्रयास करते हैं, हर वक्त, छोटे-बड़े किसी काम में आप उनकी मदद पर निर्भर रहते हैं, सहायक होने का उनका सचेष्ट प्रयास होता है। और उनकी अपनी पैनी बुद्धि होती है, चीजों को देखने-आंकने का उनका अपना ढंग होता है, जिसमें प्राचीन भारतीय बुद्धिमानी और समझदारी का समुचित पुट भी रहता है।

इवान इवानोविच हमको ताशकन्त में मिले थे। जैसा उन्होंने अपना परिचय स्वयं देते हुए कहा: "मैन् हिन्दुस्तानी जुबान का तर्जुमाकार हूँ।" और भी कई भाषान्तरकार थे, हिन्दी के और अंग्रेजी के, पर इवान इवानोविच की अपनी विशेषता थी। वे उज़बेक नहीं, रूसी हैं, पर कई पीढ़ी से उनका परिवार ताशकान्त में बसा है। उनका दुर्बल शरीर है, गाल कुछ चुचके हैं, और ज्यादातर मुस्कराने की उनकी मुद्रा रहती है, बड़े-बड़े दाँत हँसते-से दीखते रहते हैं। लगभग अट्ठाईस तीस की उनकी अवस्था है। हलके भूरे बाल हैं, और चौड़ा मस्तक है। थोड़ी-थोड़ी झेंप है, पर वैसे बड़ी खुली तबियत के हैं, और अगर बातें होने लगें तो फिर खूब बोलते हैं।

ताशकन्त में हमको उर्दू शब्दों से ओत-प्रोत हिन्दी सुनने को मिली। उसका सम्भवतः कारण यह है कि वहाँ काफ़ी वर्षों पूर्व,

हमारी स्वतन्त्रता के पहले से हिन्दुस्तान की भाषा की शिक्षा दी जाने लगी और उस समय 'हिन्दुस्तानी' का जो रूप समझा गया उसमें उर्दू शब्दों का प्रचुर स्थान रहा। वैसे मास्को में और अन्यत्र हमको शुद्ध हिन्दी बोलने वाले काफ़ी लोग मिले। पर ताशकन्त की हिन्दी जो सुनी वह अपने ढंग की थी, और इवान इवानोविच उसके बोलने वाले थे। उन्होंने कहा : "मैन् कुछ न कुछ दिन से ही आपकी जुबान सीख रहा हूँ। मेरी गलती होगी तो आप मुआफ़ करिएगा।"

"मैं" को 'मैन्' जैसे वे कहते थे वैसे ही 'नहीं' को 'नहीन्' कहते थे। इसका कारण यह पता लगा कि उन्होंने उर्दू लिपि में पढ़ना-लिखना सीखा जिसमें 'मैं' की हिज्जे मीम ये नून मौक़ूफ़ है, पर नून मौक़ूफ़ है यह शायद उनको नहीं पढ़ाया गया। जो भी हो उनकी हिन्दी हमको बड़ी प्यारी लगती थी, उनको बोलते सुनना अच्छा लगता था।

हम बच्चों के एक पायनियर हाल से आ रहे थे। सैकड़ों बच्चों का खेल था, नाच गाना था। इवान ने बताया कि गर्मी की वजह से काफ़ी बच्चे बाहर गए हैं, पहाड़ों पर या कोलखोजों में और इस वजह से पायनियर हाल में कम बच्चे थे। फिर उन्होंने पूछा, "मौसम गर्मा में आपके तालिबइल्म क्या करते हैं।" और भी उनके सवाल होते थे। भारतीय फिल्मी संगीत के वे बड़े प्रेमी हैं। उन्होंने लता मंगेशकर, मुहम्मद रफ़ी, तलत महमूद, मुकेश, मन्ना डे इत्यादि का बहुत बार नाम लिया। हमने पूछा कि हिन्दुस्तानी फिल्म तो इतनी आपने देखी न होगी, इन सबों का नाम आप कैसे इतना जानते हैं। वे हँसने लगे। उन्होंने कहा कि सीलोन का रेडियो वे बहुत सुनते हैं। हमको ताज्जुब हुआ। उन्होंने कहा वह बहुत साफ़

आता है और हिन्दुस्तानी गानों के लिए ताशकन्त के बहुत लोग उसे सुनते हैं। यह साबित करने के लिए उन्होंने सीलोन रेडियो का एक विज्ञापन भी उसी लहजे में सुना दिया। उन्होंने कहा : "इन्फ्लुएन्ज़ा! फिर आ रहा है? सावधान रहिए। ऐस्प्रो अपने पास रखिए। शब होते ही दो ऐस्प्रो लीजिए। याद रखिए ऐस्प्रो दिल को नुक्सान नहीं पहुँचा सकता।"

हँसते-हँसते हम सब लोगों का पेट फूल गया। अपने उच्चारण में इन शब्दों पर सीलोन रेडियो के इस प्रसिद्ध विज्ञापन के बोलने वाले का पूरा लहज़ा लाने का इवान इवानोविच का प्रयास सराहनीय था, और काफ़ी उनको सफलता भी प्राप्त हुई। और हम हँसे ज़ोर से तो उनको भी विशेष आनन्द आया, वे भी खूब हँसे।

हमारे दल में पंजाब के दो नवयुवक थे। सरदार तेजिन्दरसिंह और श्री हर्षलाल। दोनों घनिष्ठ मित्र हैं और एक कमरे में ठहरे थे। दोनों हट्टे-कट्टे दमदार सुन्दर पंजाबी नौजवान हैं, खूब हँसने वाले, बड़े दोस्त किस्म के। तो इवान की और इन दोनों की गहरी दोस्ती हो गई। कहीं से घूम-घाम कर लौटने पर तेजिन्दरसिंह अपनी खाट पर लेटे आँख मूँदे विश्राम कर रहे थे कि कुछ कहने के लिए इवान उनके कमरे में पहुँचे। हर्षलाल ने आगाह भी किया कि आराम करने दो, मत बोलो। पर इवान इवानोविच कुछ कह ही तो बैठे। तिस पर लेटे-लेटे ही तेजिन्दरसिंह ने कड़क कर कहा "चुप रहो, शेर लेटा है।" आवाज जरूर बुलन्द थी, इवान एक बार तो दो कदम पीछे हट गए, पर फिर सब बात समझ में आई और जोर से हँसे।

इसी के बाद से उन्होंने तेजिन्दर का नाम 'शेर आदमी' रख दिया। जैसे, तेजिन्दर ने पूछा : "इवान, खाने में अभी कितनी

देर है ।" इवान ने जवाब दिया : "शेर आदमी, अभी कुछ न कुछ देर है ।" या तेजिन्दर ने किसी बस स्टैण्ड पर खड़े पूछा, "इवान, बस आने में कितना वक्त और है ।" तो इवान ने जवाब दिया : "शेर आदमी, अभी कुछ न कुछ वक्त और है ।" "कुछ न कुछ" से इवान का मतलब "थोड़े" से होता है ।

उनको बहुत से हिन्दुस्तानी किस्से मालूम है, हिन्दुस्तान की जानकारी में उनको दिलचस्पी है । उन्होंने हिन्दुस्तान का एक किस्सा सुनाया । तीन आदमियों में बहस चली कि मास्को कहाँ है । एक ने कहा रूस में है, दूसरे ने कहा अमरीका में है तो तीसरे ने कहा कि अर्जेनटिना में है । जब मामला फैसल न हुआ तो एक बुजुर्ग के पास पहुँचे, उनकी राय पूछी, बुजुर्ग ने जवाब दिया : "भाई अपना-अपना खयाल है, मैं क्या कहूँ ।"

यह किस्सा सुना कर इवान इवानोविच खी-खी करके बहुत हँसे, बहुत देर तक हँसे । उनके चित्त की प्रसन्नता देखने लायक होती थी । कोई न कोई मजाक की बात ढूँढना, उस पर कुछ कहना, हँसना, यह उनका बराबर प्रयास रहता था । हर्षलाल एक दिन बाल कटवाने गए । इवान के बिना तो हम एक कदम न चल सकते थे । जब तक वे हमारी बात का वहाँ की भाषा में अनुवाद न करें नाई क्या जाने कि कोई क्या चाहता है । हर्षलाल शायद जल्दी में थे, इन्होंने इवान से कहा कि नाई से कह दें कि वह जल्दी काम निपटा दे । इस पर इवान ने कहा कि ऐसा मत करो, नहीं तो हिन्दुस्तान के नाई वाला हाल हो जायगा ।

और फिर उन्होंने एक और किस्सा सुनाया । कहा कि हिन्दुस्तान में एक नाई के पास एक आदमी गया कि जल्दी तूफ़ान मेल की तरह बाल काट दो । जल्दी करने पर बीच-बीच में कई जगह

बाल रह गए। जब उस व्यक्ति ने नाई से इसकी शिकायत की तो नाई ने जवाब दिया : "भाई, जब तूफ़ान मेल चलती है तो छोटे-छोटे स्टेशन छोड़ती जाती है।"

यह किस्सा सुनाकर भी इवान इवानोविच बहुत हँसे। हम लोगों ने पूछा कि हिन्दुस्तान के इतने सब किस्से, इतनी सब बातें उनको कैसे पता हैं। उनको सवाल पर जैसे कुछ ताज्जुब हुआ। उन्होंने कहा कि हिन्दुस्तान की बातें तो हम बचपन से सुनते आते हैं, यहाँ घर-घर में अपने महान् पड़ोसी हिन्दुस्तान की बातें होती हैं। फिर उन्होंने कहा कि हमारे यहाँ किताबें हैं, हिन्दुस्तान के ऊपर, वहाँ के लोगों के बारे में, तवारीख के बारे में, वगैरह।

एक दिन खाने की मेज़ पर "शेर आदमी" की और इवानोविच की ऐसी गुत्थी फँसी कि हल न हो पाई। सरदार तेजिन्दरसिंह सत्ताइस वर्ष के सुन्दर हृष्ट-पुष्ट पंजाबी नवयुवक हैं। उनका हृष्ट-पुष्ट शरीर, उनकी दाढ़ी और साफा स्वभावतः सर्वत्र आकर्षण का केन्द्र बन जाता था। ताशकन्त में जिधर से वे निकलते थे, घिर जाते थे। कहीं घूम टहल कर वे और इवान जब हमको खाने की मेज़ पर मिले तो इवान ने कहा : "यह शेर आदमी है। ताश-कन्त भर का जवान औरतों लोग इसको देखता है, इसको घेरता है।"

तेजिन्दर और हम सब ही भूखे थे, और खीरा खाने की इच्छा हुई। पहले दिन खीरा मिला था और बहुत अच्छा लगा था ताश-कन्ती खीरा। अब 'शेर आदमी' ने इवान से कहा कि खीरा मंग-वाओ। खीरा वे न समझे, तो अंग्रेज़ी में 'कुकम्बर' कहा गया। अंग्रेजी वे थोड़ी ही जानते थे और 'कुकम्बर' भी न समझ पाए। अब जो 'शेर आदमी' ने खीरा को समझाने का प्रयास किया, नक्शा

बनाकर, हाथों से समझा कर, और इवान बेचारे पूरी कोशिश कर भी न समझ पाये—तो वह दास्तान विचित्र हो गयी। तेजिन्दर समझाने पर आमादा और इवान समझ पाने से लाचार। वे बेचारे फिर दौड़े-दौड़े भोजन प्रबन्ध की इन्चार्ज एक महिला के पास पहुँचे, इधर-उधर और हाथ-पैर फटफटाया पर हताश ही रहे। 'शेर आदमी' को खीरा न मिला, और इवान इवानोविच ने 'शेर आदमी' से बड़ी माफियाँ माँगीं। और हम लोग जो साथ में बैठे थे, हँसते-हँसते बेहाल हो गए।

ताशकन्त में तीन दिन में इवान से और भी बहुत बातें हुईं। उन्होंने हिन्दुस्तान के बारे में बड़े सवाल किए, खास तौर से हमारी पाँच साला योजना के बारे में वे जानना चाहते थे। उनका एक और अनोखा सवाल था। उन्होंने पूछा कि हिन्दुस्तान में इस वक्त कितना ब्रिटिश सरमाया अभी भी बना हुआ है। उनके मुल्क की बात हुई। उन्होंने कहा "मुझे अपने मुल्क पर बड़ा फ़ख्र है। हमारे मुल्क के लोग बड़े बहादुराना हैं। हमको कभी कोई ताकत गिरा नहीं सकती।"

चलते वक्त हम इवान इवानोविच के साथ, याददाश्त हरी रखने के ख़याल से, एक फोटो उतरवाना चाहते थे। पर इस बात से उनको सख्त एतराज था। एक दम से इन्कार तो वे कर नहीं सकते थे, आखिर हम उनके मेहमान थे और रूसी बहुत मेहमाननवाज़ होता है। तो उन्होंने बड़ी नाँहनूँह की। 'मैं खूबसूरत आदमी नहीं हूँ,' 'मैं दुबला हूँ,' 'मेरी दाढ़ी नहीं बनी है,' 'मेरे कपड़े मैले हैं,' वगैरह। पर हम लोगों ने एक न मानी और मजबूरन उनको मेह-मानों का दिल रखने के लिए साथ फोटो खिचवानी पड़ी।

ताशकन्त में आखिरी वक्त तक हमारा और इवान का साथ

रहा। हम मास्को के लिए जब चले तो वे हवाई अड्डे तक आए। बहुत-बहुत तरह से उन्होंने हमसे विदाई कही। फिर जब हम मास्को में थे तो ताशकन्त से मास्को आने वाले एक व्यक्ति के हाथ उन्होंने एक पत्र भिजवाया, सबको बहुत-बहुत याद किया। तीन दिन के साथ में ही वे हमारे घनिष्ठ मित्र हो गए। हम लोगों को यह लगा जैसे अपने ही देश के वे हमारे भाई है। उनकी सरलता और सज्जनता, उनका हास्य और उनकी बाते, उनकी जुबान, सब ही की याद आती रहती है।

रूसी गगन पर एक भारतीय टुकड़ी

ताशकन्त से मास्को के लिए हम दिन में ११ बजे उड़े। ताश-कन्त हमने भारी तबियत से छोड़ा। हवाई अड्डे पर विदाई के लिए काफ़ी लोग आ गये थे। रूस का सुप्रसिद्ध इल्यूशिन जहाज था, काफी आरामदेह और साफ़-सुथरा। हम बैठे ही थे कि प्लेन भर-भराने लगा, फिर दौड़ा, फिर उठा, जमीन और पेड़ और खेत और प्लेन की खिड़की से दिखने वाले मानव छोटे, और-और छोटे लगने लगे। और थोड़ी ही देर बाद प्लेन बादलों में जैसे फँस गया। बाहर सर्वत्र बादल ही दिखे, और कुछ नहीं। और चन्द मिनिटों बाद प्लेन बादलों के ऊपर उठ आया। वायुयान के नीचे दूधिया बादलों का विशाल समुद्र था। अद्भुत उस बादल-समुद्र की छटा थी। पर ऊपर धूप थी। काफ़ी कड़ाके की धूप, काफ़ी चमकता सूर्य। और हमने सोचा, नीचे पृथ्वी वालों को सूर्य नहीं दीखता होगा, उनको सघन जलद ही दिखते होंगे, और शायद अरतोड़ वृष्टि होती हो, उनको क्या पता कि जलद के ऊपर सूर्य देव सदैव के समान मुस्करा रहे हैं।

हम लगभग दस हज़ार फीट की ऊँचाई पर उड़ रहे थे, लगभग ढाई सौ मील प्रति घण्टे की हवाई जहाज की रफ्तार थी। उड़ने के आध घण्टे के अन्दर-अन्दर वह बादल-समुद्र पीछे रह गया। और तब नीचे दिखा सूखा सपाट, बलुहा, मनुष्य-विहीन निर्जन प्रदेश। हम अब उज़बेकिस्तान को पीछे छोड़ कर सोवियत संघ के कज़ाकि-स्तान प्रदेश पर उड़ रहे थे। विराट् यह प्रदेश है, क्षेत्रफल में सम्भ-वतः भारत से बड़ा। पर इसके अधिकांश भाग में विशाल मरुस्थल है और उसी सिलसिले का रेगिस्तानी क्षेत्र कजाकिस्तान में व्याप्त है।

लगभग चार घण्टे तक हम इसी खंखाड़ सपाट पर उड़ते रहे, नीचे एक गाँव न दिखा, मानव का एक चिन्ह न दिखा। जहाँ तक निगाह जाती कुछ उठती-चढ़ती बलुही पृथ्वी ही दिखाई पड़ती, और जब हलके-हलके बादल साफ हो गए तो प्रखर सूर्य की रोशनी में उस सपाट की हलकी सफेदी मटमैली ललाई में बदल गई। कज्जकों का यही देश है। केन्द्रीय एशियाई और रूसी प्रभाव से गढ़े हुए यह लोग अपनी घुड़सवारी के लिए, अपनी हिम्मत और दिलेरी के लिए, अपनी अलमस्ती और दोस्ती के लिए संसार में प्रसिद्ध हैं। टालस्टाय ने कज्जाक नामक अपने लघु उपन्यास में इन मानवों का सुन्दर चित्र उपस्थित किया है।

चार घण्टे तक बराबर उड़ने के बाद हम थोड़ी देर के लिए एक हवाई अड्डे पर रुके। अड्डा छोटा था, थोड़ी देर की टिकान थी। सरदार तेजिन्दरसिंह, श्री हर्षलाल, सहयात्री आसाम निवासी अमलेन्दु गुहा और गुजरात के सुरेश के साथ रेस्तोरां में कुछ खाने गए। भाषान्तरकार साथ में न था और रेस्तोरां में काम करने वाली दो रूसी महिलाओं को भोजन का आर्डर समझाना कठिन हो गया। एक ने पूछना चाहा कि मुर्गी का गोश्त मिलेगा या नहीं पर यह पता कैसे लगे, कहा कैसे जाए। तो तेजिन्दर ने 'कुक्कड़ू कूँ" आवाज निकाल कर यह अर्थ स्पष्ट किया। रूसी महिला समझ गई, हँसी, कहा, "नियतो" यानी नहीं है। तो मछली के बारे में पूछने की सलाह ठहरी। अब यह कैसे समझाया जाय। तो तेजिन्दरसिंह ने मुँह से "फूँ SSSS" ऐसी आवाज निकालते हुए अपना हाथ उसके सामने इस प्रकार हवा में चलाया मानो मछली तैरती हो। यह भी तदबीर ठीक रही, वह समझ गई और मछली आ गई।

जब हम फिर उठे तो क्या देखा कि शीघ्र ही पृथ्वी गुम हो

गई और नीचे नीले-नीले जल की विशाल व्यापक चादर बिछ गई, जहाँ तक निगाह जाय बस वही नीला जल। तो प्रकृति का यह मसखरापन, उस लम्बी चौड़ी मरुभूमि में एक समुद्र छोड़ दिया। वह अराल झील थी, पर उसे बहुधा अराल सागर भी कहते हैं। इसी के लगभग तीन सौ मील पश्चिम में पृथ्वी में गिरफ्त एक और सागर है, अराल से बहुत बड़ा, सुप्रसिद्ध कास्पियन सागर।

लगभग एक घण्टे बाद यह नील जल का सिलसिला खत्म हुआ, और फिर वही रेगिस्तानी क्षेत्र आ गया। फिर हम आक्त्युबिनस्क नामक एक हवाई अड्डे पर रुके, दिन का खाना यहीं हुआ। यह भी कजाकिस्तान में था। जब वहाँ से चले तो मास्को टाइम तीन बजे दिन का था। यानी उस समय ताशकन्त में शाम के छः बजे होंगे। हम ताशकन्त से ११ बजे दिन में उड़े थे, जब कि मास्को में सुबह का आठ रहा होगा। मास्को टाइम ताशकन्त के टाइम से तीन घण्टा आगे है। यानी करीब सात घण्टे उड़ चुके थे। पर खंखाड़ रेगिस्तान और यह जल शीत ही दिखी।

आक्त्युबिनस्क से उड़कर प्लेन यूर्स्क नामक नगर की ओर चला। वहाँ हम करीब साढ़े पाँच बजे पहुँचे। कजाकिस्तान यहीं से छूटा। यानी हमको कजाकिस्तान पार करने में लगभग नौ घण्टे लगे।

आक्त्युबिनस्क के बाद कुछ हरियाली दिखी, रेल पटरी दिखी, शहर और गाँव दिखे, विशाल खेत आए, और मानव का चिन्ह मिला। नौ घण्टे की खुश्की के बाद हरियाली बड़ी भली लगी। और रूसी गगन में उड़ती हुई बाइस भारतीय मानवों की वह टुकड़ी मास्को को आमुख थी। हँसते सब जा रहे थे। गुर्जर प्रदेश की ललनाएँ थीं, पंजाब के अलमस्त युवक थे, असम का एक कवि था

और बम्बई के अपने ढग के निराले नौजवान थे। साथ में एक रूसी भाषान्तरकार थी और एक वायुयान परिचायिका थी।

तो रूसी गगन में यह भारतीय टोली, और हम सोच रहे थे जमाने की उलट-पुलट। कोई जमाना था जब भारत से कोई मास्को जा ही न सकता था। पंजाब के कम्युनिस्टों ने सीमा प्रान्त और अफगानिस्तान की सरहद को गुप-चुप रूप से पार कर रूस खसक जाने की एक पूरी कला ही विकसित कर ली थी, बराबर उनका आना-जाना होता था। मास्को में किसी समय कम्युनिस्ट अन्तर्राष्ट्रीय संघ द्वारा दीक्षित जाने कितने भारतीय कम्युनिस्ट इसी मार्ग से बराबर आते रहे। कहते हैं कि नेताजी सुभाषचन्द्र बोस भी इसी राह से भारत से निकले थे। और भारत में "मास्को रिटर्ण्ड" लोगों के लिए उस जमाने की ब्रिटिश पुलिस कितनी खोज करती थी।

पर वे जमाने अब लद चुके हैं। रूसी गगन पर एक भारतीय टुकड़ी भारत-रूस मैत्री के चिन्ह स्वरूप थी। हँसते-बोलते, खुश-खुश हमारे वे देशवासी थे। लगभग सात बजे सूर्य कुछ धूमिल हुआ, पर सूर्यास्त में अभी देर थी। सूर्यास्त मास्को में लगभग साढ़े आठ या नौ बजे होता है। धूमिल सूर्य की पीली-पीली रोशनी प्लेन में भर गई, छटा ही कुछ दूसरी हो गई। ११ घण्टे की प्लेन यात्रा के बाद, इतनी देर तक प्लेन के इञ्जन की सतत घरघराती आवाज सुनते-सुनते यात्री शायद कुछ थके से शान्त अपनी-अपनी सीटों पर एक घण्टे से अधिक पड़े रहे। कुछ झपक भी गये।

प्लेन की रूसी परिचायिका ने इसी वक्त देखा, गर्वा मण्डल की सरलता नामक एक बहिन रो रही थी, चुप-चुप, पर गालों पर आँसू बह रहे थे। वह चिन्तित हुई, उसने झपक के लोगों को जगाया। सब चिन्तित हो गये, कारण जानना चाहा। अन्त में गर्वा मण्डल

की ही एक संगिनी को बताया गया कि माँ की याद आ रही थी तरुलता को, इसीलिए वह रो रही थी। और तब दो माँएँ अपने बच्चों की याद कर रोने लगीं। अजब परेशानी हो गई। रूसी परिचायिका तो बड़ी चिन्तित हो गई, भाषा न जानते हुए भी उसने कई ढंग से उनको ढाढ़स बन्धाने की कोशिश की।

प्लेन के सब ही लोग तीनों रोती बहनों को चुप कराने में लग गए। तेजिन्दर और हर्षलाल ने तो सीधे-सीधे प्लेन पर मटक-मटक कर पंजाबी भंगड़े का प्रदर्शन कर दिया। उससे कुछ रुलाई थमी। तब गर्वा मण्डल के एक युवक श्याम ने और करतब दिखाए। मटकने-चटकने लगे, कुछ हँसी की बात गुजराती में करने लगे। बनावटी रुलाई की: "हें हें हें SSSS, आज रोटी खाई दाल नहीं थी।" या "हें हें हें SSSS आज मुर्गी खाई मिर्च नहीं थी।"

कहाँ तक कोई हँसने से बच सकता था, रुलाई खत्म हो गई, हँसी फिर आने लगी, प्लेन का वायुमण्डल परिवर्तित हो गया। रूसी परिचायिका बड़ी प्रसन्न हुई, उसने सबों को चाय पिलाई। सच में वह भारतीय टोली बहुत अच्छी लगी। पारस्परिक सौहार्द, स्नेह, भारतीय की मौलिक अच्छाई, उमंग, उत्साह, सद्भाव सब ही वहाँ प्रचुर मात्रा में था।

अब हम विशाल रूसी मैदान पर उड़ रहे थे। ज़रखेज इलाका आ गया था, नीचे कोलखोजों के विशाल खेत दिखाई पड़ते थे। और विशाल खेतों के बीच बड़े गझिन ऊँचे-ऊँचे वृक्ष दिखे, जैसे कोलखोज वालों ने ही आयोजित रूप से कुछ भूमि पर जंगल बो दिया हो। और बीच-बीच में घनी बस्तियाँ दीखती थीं, सम्भवतः ग्राम रहे होंगे। सर्पवत् मुड़ती-चुड़ती एक नदी बराबर प्लेन के साथ चल रही थी। जैसे गंगा-यमुना के सूखने पर काफी हिस्से में बालू

आ जाता है और पानी एक तरफ़ को खसक रहता है, वैसे ही उस नदी का हाल था, पर मुड़ती-चुड़ती वह धारा बहुत-बहुत देर तक साथ चलती रही।

मास्को टाइम अब आठ था। मानव इतिहास में विशाल हरूफों में लिखा, मास्को, या मास्कव, या मास्कोवा, अब करीब था, लगभग एक घण्टे की यात्रा और मास्को, मास्को का क्रेमलिन—कितना पिछले तीस-चालीस वर्षों से सारे मानव ने इनका नाम सुना। तो ऐतिहासिक मास्को, जिसकी ओर संसार के कोटि-कोटि मानवों ने आशा से देखा, जो मानव इतिहास की नयी दिशा का प्रतीक बन गया, अब वह निकट था। हमारी यात्रा अब अन्त पर थी।

बाहर दूर पर बादल थे जो जरा खसके, और अस्ताचल को तेज़ी से जाता सूर्य दिखा, बड़ा-सा लाल-लाल गोला। बादलों ने सूर्य को फिर छिपाया पर शीघ्र ही सूर्य ने बादलों को दो जगह चीर कर उन पर ललाई बिखेर दी। प्रकृति की छटा वर्णन नहीं की जा सकती। नक्शा हर मिनिट बदल रहा था। अभी भी सूर्य अन्तरिक्ष के ऊपर था और अस्त होते सूर्य पर बादल फिर चढ़े, पर सूर्य की किरणों की ललाई जगह-जगह बादलों को चीर कर उनको अद्भुत छटा प्रदान कर रही थी। और थोड़ी ही देर बाद सम्पूर्ण अन्तरिक्ष डूबते हुए सूर्य के सौन्दर्य से चहक उठा। बादल टहलकर ऊपर आसमान पर आगये और प्राची में ललाई, सर्वत्र ललाई दिखी, नीचे क़ाफ़ी तेज और ऊपर उससे कुछ धीमी। इसके भी ऊपर नील अम्बर था, पर भारतीय गगन की निलास नहीं थी, लगा उस नीलेपन में कुछ हरेपन का पुट है। उस पर घने काले बादल थे।

और अब सूर्य के अस्त होने की वेला आ गई। ठीक हमारे सामने बड़ा क्रुद्ध लगता लाल-लाल सूर्य था। घनघोर ललाई आ गई, ख़ूनी ललाई समझिए। लाल मास्को पहुँचने के ठीक पहले सूर्य की

यह ललाई कुछ अजब संयोग को इंगित करने लगी। सूर्य भगवान् डूब रहे थे, पर उस समय भी उनका तेज विद्यमान था। और फिर सूर्य अस्त हो गया। उसी समय प्लेन पर कोई हरेन्द्र चट्टोपाध्याय की सुप्रसिद्ध लाइनें गुनगुनाने लगा—

सूर्य अस्त हो गया,
गगन मस्त हो गया।

और अब अन्धकार व्यापक होने लगा पर हौले-हौले धीरे-धीरे। मास्को में सूर्य अस्त होने के बाद भी काफी देर तक कुछ दिन की रोशनी बनी रहती है और हमने सोचा कि भले यहाँ सूर्यास्त हो पर इसी समय संसार के दूसरे भाग में सूर्योदय होता होगा। यानी अन्धकार कभी नहीं होता, या होता है तो केवल क्षणिक। और हमने सोचा, मानव का भी यही हाल है, अन्धकार मानव को घेरता है पर इतिहास साक्षी है कि मानव सदैव अन्धकार को चीर कर प्रकाश में आता है, प्रकाश के लिए मानव की यात्रा निरन्तर अथक चलती रहती है।

'सूर्य अस्त हो गया, गगन मस्त हो गया' के बाद हर्षलाल ने हीर-रांझा की कुछ लाइनें गुनगुनाईं। फिर गर्वा मण्डल के श्याम ने एक किसानी गीत छेड़ दिया। प्लेन में अजब फिज़ा थी। मास्को पहुँचने को पन्द्रह मिनिट और रह गए थे। मास्को का बाह्य भाग दिखाई पड़ने लगा। कायदे से बने कतार के कतार मकान दिखे, सड़कें दिखीं, उनपर दौड़ती बसें दिखीं, और खिलौने जैसे रेंगते से मनुष्य दिखे। वह मुड़ी-चुड़ी सर्पवत् नदी अभी भी साथ थी, और दूसरी तरफ नीचे मास्को नदी दिखी। प्लेन नीचा होने लगा। हवाई अड्डे पर धूमिल प्रकाश में पचासों हवाई जहाज दिखे। और तब प्लेन भूमि पर आ गया। अनायास एक साथ ही कई के मुख से निकल पड़ा 'मास्को'।

जहाँ लेनिन का देहान्त हुआ

मास्को पहुँचने के दो दिन बाद हम वहाँ से लगभग तीस-चालीस मील पर स्थित व्लाडीमीर इलिच सामूहिक खेत (कोलखोज) देखने गए। मास्को के पास पहाड़ियाँ हैं, काफी हरी-भरी, और काफी व्यापक। इन्हें गोर्की पहाड़ियाँ कहते हैं। इन्हीं के मध्य में यह कोलखोज था। रूस पर महान् लेनिन की छाप है, सारी जनता उनको व्लाडीमीर इलिच या सिर्फ इलिच के नाम से बड़े स्नेह और आदर से याद करती है। इलिच के नाम पर स्थानों का नामकरण होना रूस में सामान्य बात है। फिर भी हम कोलखोज के प्रवक्ता बासियोनोक से पूछ ही तो बैठे कि आपने अपने सामूहिक खेत का लेनिन के नाम पर क्यों नामकरण किया।

बासियोनोक चेहरे से गम्भीर और अनुभवी व्यक्ति लगते थे। हिटलरी आक्रमण के विरुद्ध उन्होंने और उनके पूरे कोलखोज ने बहादुरी से संघर्ष किया था। कोलखोज के सैंकड़ों व्यक्ति सोवियत भूमि की रक्षा के लिए बलिदान हुए थे। उस अग्नि में तपने के चिन्ह बासियोनोक के चेहरे पर विद्यमान थे। हमारे प्रश्न का उत्तर उन्होंने अपने सादे ढंग से, पर निश्चय गर्व के साथ यही दिया: "यह ऐतिहासिक ग्राम है। यहाँ लेनिन आ चुके हैं। उनका एक प्रसिद्ध व्याख्यान यहीं हुआ था।"

बात सन् १९२१ के प्रारम्भिक दिनों की है। १९१७ की महान् क्रान्ति के बाद दो वर्ष तक विदेशी साम्राज्यवादी आक्रमण-कारियों के विरुद्ध घनघोर संघर्ष कर, उनको पराजित करने के पश्चात् थका, रूस देश अपनी उजड़ी अर्थ-व्यवस्था को बसाने के

प्रयास में लग रहा था। इसी वक्त लेनिन ने नारा बुलन्द किया कि हमको सारे रूस देश में बिजली पहुँचाना चाहिए। उसी वक्त लेनिन की "नई आर्थिक नीति" के अनुसार निजी व्यवसाय की इजाजत दे दी गई थी। इलिच ने तब कहा था कि "नई आर्थिक नीति" और रूस के विद्युतीकरण का योगफल साम्यवाद के बराबर है। महान् लेनिन की वह विराट् कल्पना थी। रूस के अन्धेरे ग्रामों में आलोक पहुँचे; वह आलोक नए समाज का हरकारा सिद्ध होगा।

तो इसी ग्राम में लेनिन ने ४ जनवरी, १९२१ को किसानों की एक जमघट को विद्युतीकरण का महत्त्व बताया था। वहीं से लग-भग एक मील की दूरी पर वे एक भवन में रहते थे। काम तेजी से हुआ और मई में पहला बिजली लट्टू वहाँ लगने का कार्यक्रम बना। ग्राम वालों ने लेनिन को एक पत्र भेजा: "प्यारे व्लाडीमीर इलिच, गोर्की ग्राम में गत रविवार को बिजली जलाने का कार्यक्रम स्थगित होकर आज सम्पन्न होगा। हमारा अनुरोध है कि सम्भव हो तो इस अवसर पर आप आइये। कृपया सूचित करिए कि कौन वक्त आपके लिए सुविधाजनक होगा।"

इलिच का उत्तर था: "आदरणीय साथियो, मेरी तबियत ठीक नहीं है। मैं न आ सकूंगा। मैं कहना चाहता हूँ कि आप हमारा इन्तजार न करें, मेरे बिना सब कार्यक्रम शुरू कर दें। मुझे आशा है कि आप मुझे क्षमा करेंगे। अपनी सद्भावनाओं और आपकी सफलता की सम्पूर्ण कामनाओं सहित—यूलियानोव लेनिन।'

सन् १९१८ में फैनीकप्लान नामक सोशलिस्ट रिवाल्यूशनरी पार्टी की एक स्त्री ने लेनिन पर पिस्तौल का वार किया था। लेनिन काफी घायल हुए, पर बच गए। उसी समय इस ग्राम के निकट

गोर्की पहाड़ियों में स्थित एक उद्यान-भवन में लेनिन स्वास्थ्य लाभ और आराम के लिए रहने आये थे। वहीं २१ जनवरी, १९२४ को उनका देहान्त हुआ। यह उद्यान-भवन आज सोवियत देश के नागरिकों के लिए पावन तीर्थ-स्थल है। उसकी खूब देख-रेख रखी जाती है, और सब चीजें उसी दशा में रखी हैं जैसे लेनिन की मृत्यु के समय वे थीं।

सघन वृक्षों के बीच छाल दीवारी से घिरा हुआ वह उद्यान-भवन है। मास्को की जारशाही पुलिस के कप्तान का वह डाचा समझिए। जारशाही के जमाने में शहरों के रहने वाले धनी, सम्पन्न, शक्तिवान लोग निकट देहातों में विश्राम के लिए, तबियत बदलने के लिए भवन रखते थे, जिन्हें सामान्यतः 'डाचा' कहते हैं। इस घर में लेनिन के रहने का एक खास कारण यह था कि यहाँ से मास्को तक सीधी टेलीफोन लाइन थी। पुराने किस्म का वह टेलीफोन अभी भी वैसे ही वहाँ रखा है। टेलीफोन कभी खराब हुआ तो लेनिन ने सम्बन्धित मन्त्री को उसे ठीक करवाने के लिए पत्र लिखा। उस पत्र की एक फोटो कापी टेलीफोन वाले मेज पर आज भी रखी है।

पुलिस कप्तान बड़ा जमींदार भी था। स्वभावतः ठाठदार उसका यह भवन था। कई एकड़ भूमि उस छालदीवारी के अन्दर थी और सुन्दर फुलवारी थी, फव्वारा था, बड़े-बड़े वृक्ष थे, पहाड़ी की ऊंचाई पर बसे होने की वजह से चारों तरफ दृश्य बड़ा मनोरम था। एक तरफ एक कोई छोटी सी नदी काफी नीचे बहती थी लेनिन को वह जगह बहुत पसन्द थी। वह उसे 'दूसरा स्विटजरलैंड' कहते थे। पिस्तौल के वार से अच्छे होने पर लेनिन फिर मास्को गए, पर पूरी तौर से वे कभी न अच्छे हुए। १९२२ में वे चार महीने

वहाँ रहे। १६२२ के दिसम्बर मास में उन पर फालिज गिरा और फिर वह कुछ सम्भले। पर पूरा आराम न था और डाक्टरों और साथियों के दबाव से वे १५ मई, १६२३ को फिर वहाँ पहुँचे। इलाज होता रहा और समझा जाता था कि अब वे काफी सुधर गये हैं, पर सहसा २१ जनवरी, १६२४ को उनकी तबियत खराब हुई और उसी दिन उनका देहान्त हो गया। उनके अध्ययन कमरे में एक कलेण्डर अभी भी लगा है। उस पर रूसी साहित्यकार चेखोव का चित्र है। २० जनवरी तक का तारीख पत्र लेनिन ने फाड़ा है। उसके बाद वह न फाड़ा गया। आज भी वह कलेण्डर लेनिन की मृत्यु-तिथि २१ जनवरी, १६२४ दिखलाता है।

उस उद्यान-भवन में दो मकान हैं, एक तो मुख्य भवन है, ठाठ-दार, और एक बगल में छोटा-सा दोमंजिला मकान है, शायद मेहमानों के लिए या सम्भवतः कर्मचारियों के लिए। शुरू में जब लेनिन वहाँ पहुँचे तो वे छोटे मकान में ही रहे। उसका मुख्य कारण था कि वे ईंधन का अपव्यय नहीं चाहते थे। बड़े मकान को गर्म रखने के लिए ईंधन काफी जलाना जरूरी था, पर छोटे मकान में उससे कहीं कम ईंधन से काम चल जाता था। दूसरी मंजिल में हमने लेनिन का छोटा-सा कमरा देखा, कमरा क्या कोठरी कहिए। एक कोने में उनका बिस्तर था, और छोटे से मेज पर उनके कागजात थे। लेनिन तब कम्यूनिस्ट अन्तर्राष्ट्रीय संघ की तीसरी विश्व कांग्रेस की तैयारी में लगे थे। मेज पर उनकी हस्तलिपि में जर्मन भाषा में, अंग्रेजी भाषा में, विभिन्न व्यक्तियों को लिखे गए पत्रों की फोटो-कापियाँ थीं। इसी कमरे में लेनिन की पुस्तक "मजदूर क्रान्ति और भगोड़ा काट्स्की" लिखी गई।

जब वे वहाँ रहते थे तो कुछ मजदूरों ने उन्हें एक सूट भेंट

किया। मजदूरों ने पत्र में लिखा कि तुम्हारे पास पहनने को ठीक वस्त्र नहीं हैं, और कहा : "हमारे इलिच, कृपया इन वस्त्रों को पहनो।" लेनिन ने इसका उत्तर दिया : "साथियो, सद्भावनाओं के लिए और भेंट के लिए मैं आभारी हूँ। इसी समय एक गुप्त बात मैं बता दूँ, हमारे पास कभी कोई भेंट भेजने की जरूरत नहीं है। इस गुप्त बात का ज्ञान सबको हो जाय।"

अपने साथियों से बातचीत में लेनिन बहुधा कहते थे : "मैं मार्क्स से सलाह-मशविरा करूंगा।" उनका मतलब होता था, किसी समस्या पर अपनी राय निश्चित करने के पूर्व वे साम्यवाद के आचार्य कार्ल मार्क्स की पुस्तकों को देखेंगे। बाद के वर्षों में जब लेनिन का स्वास्थ्य और खराब हो गया था, और ईंधन संकट भी आसान हो गया था, उनका रहना उस उद्यान-भवन के बड़े मकान में होता था। यहीं दूसरी मंजिल के एक बड़े से कमरे में उनका पुस्तकालय जैसा का तैसा आज भी रखा है। यहीं लेनिन का मार्क्स से 'सलाह-मशविरा' होता था। ज्यादातर पुस्तकें रूसी भाषा में थीं, पर कुछ जर्मन और अंग्रेजी भाषा के भी ग्रन्थ थे। मार्क्सवादी ग्रन्थों के अलावा लेनिन साहित्य-प्रेमी भी थे। उनके पुस्तकालय में शेक्सपियर, गेटे, तुर्गनेव, पुश्किन इत्यादि महान् साहित्यकारों की रचनाएँ थीं। फिर विज्ञान पर, भूगोल पर तथा इतिहास पर अनेकानेक ग्रन्थ थे। वह पुस्तकालय लेनिन के महान् पांडित्य और अध्यवसाय का जीता-जागता उदाहरण है।

बड़ा घर निश्चय ही ठाठ-बाट वाला था। पर हमको उस स्मारक की परिचायिका श्रीमती शिलोवा ने इस बात को खास तौर से बताया कि वह तड़क-भड़क पुलिस कप्तान के जमाने की है, लेनिन का उसमें कोई हाथ नहीं है। लेनिन ने बस एक काम

करवाया दूसरी मंजिल जाने में उनको कुछ तकलीफ होती थी तो उन्होंने जीने पर एक लकड़ी लगवाई ताकि उसका सहारा लेकर वे ऊपर जा सकें। अपने काम के लिए उन्होंने एक छोटा-सा कमरा ही चुना। उसी कमरे में एक मेज पर कलमदान रखा था, **डीनियून जिट** नामक तत्कालीन एक सुप्रसिद्ध जर्मन पत्र के अंक थे, ग्रामीण विद्युतीकरण योजना पर एक मोटा-सा ग्रन्थ था, जल से विद्युत् शक्ति पैदा करने पर कुछ साहित्य था और ब्रिटिश कम्यूनिस्ट पार्टी का एक प्रकाशन था। छोटी-सी उनकी कुर्सी थी। चाय का पानी गरम करने का एक बर्तन पास ही था। लेनिन की पत्नी क्रुप्सकाया का कमरा लेनिन के इसी अध्ययन-कमरे के बगल में है और वह ही चाय बनाकर लेनिन को देती थीं।

उसी मकान में नीचे एक बड़ा-सा हाल जैसा कमरा था। यहाँ सप्ताह में एक बार लेनिन कोई न कोई चलचित्र देखते थे। चल-चित्रों के वे प्रारम्भिक दिन थे और सामने एक छोटी-सी स्क्रीन थी जिस पर प्रोजेक्टर से फिल्म दिखाई जाती थी। एक बड़ी सादी-सी आराम कुर्सी थी, जिस पर ली हुई उनकी फोटो बहुधा इधर-उधर छपी है। हाल के कोने में एक पियानो रखा था। और जब चल-चित्र प्रदर्शित होता था तो लेनिन की बहिन वह पियानो बजाती थीं, सिनेमा प्रदर्शन के अवसर पर अड़ोस-पड़ोस के लोग भी आ जाते थे। लेनिन को बच्चों से बड़ा प्यार था। क्रिसमस के अवसर पर वे परम्परागत रूप से अपने घर में क्रिसकस वृक्ष खूब सजाते थे और सब पड़ोस के बच्चे बुलाए जाते थे। ऐसे ही एक अवसर का किस्सा हमको सुनाया गया जिससे उस महा मानव की एक अद्भुत झलक मिलती है। क्रिसमस वृक्ष भव्य सजा था, एकत्रित बालक आतुर थे कि इलिच आते होंगे, पानी जोर का बरस रहा था, पर इलिच

आए और सब चिन्तित हुए। इतने में कमरे में एक कोने से एक भालू धीरे-धीरे बच्चों की ओर बढ़ने लगा। अचम्भित सभी हुए और कुछ बच्चे तो सच में डर कर चिल्ला उठे। और तब उस भालू की खाल को पीछे फेंक कर ठट्ठा मारकर हँसते हुए इलिच सामने आ गए। बच्चों की प्रसन्नता की कल्पना की जा सकती है। बच्चों के साथ वे पास की नदी में नहाने भी जाते थे।

लेनिन के उस स्मारक-भवन में अनेकानेक चित्र हैं पर एक बिल्ली को गोद में लिये लेनिन का चित्र बड़ा ही हृदयग्राही है। बोलशेविक पार्टी के एक मजदूर साथी ने वह बिल्ली लेनिन को भेंट की थी, और लेनिन को उससे बड़ा स्नेह था।

और फिर हमने वह छोटा-सा कमरा भी देखा जहाँ लेनिन चिर निद्रा में मग्न हुए। हमने लेनिन की किसी जीवनी में बहुत पहले पढ़ा था कि अन्तिम समय क्रुप्सकाया लेनिन को जैक लंडन की एक पुस्तक से कुछ सुना रही थीं। जैक लंडन की वह पुस्तक **लव फ़ार लाइफ़** हमने उस कमरे में मेज़ पर रखी देखी। जिस बिस्तर पर उनका देहावसान हुआ वह जैसा का तैसा पड़ा था। बगल में छोटे-से मेज़ पर दवाइयाँ थीं। उनकी छड़ी भी एक कोने में रखी थी।

उस पूरे घर में ऐसा लगा जैसे लेनिन की आत्मा अभी भी मौजूद है। सम्पूर्ण वातावरण उस महामानव की छाप लिये हुए था। और जैसे-जैसे हम वहाँ घूमे, जैसे-जैसे श्रीमती शिलोवा ने लेनिन के उस स्थान के जीवन की बातें और उनके चिन्ह सुनाए-दिखाए, वैसे वैसे हमको लगा कि यह महामानव वस्तुतः कितना मानवीय था, कितना सादा, कितना सरल था, और जीवन से कितना प्रेम करता था। श्रीमती शिलोवा का एक किस्सा इस सम्बन्ध में विशेष रूप से हृदय-ग्राही है।

उस उद्यान-भवन के पिछली तरफ पाँच सौ साल से भी अधिक पुराना एक वृक्ष है। उसी के बगल में एक जंगली गली सी है। लेनिन बहुधा इसी मार्ग से आखेट को जाते थे और कभी लौटने में देर भी हो जाती थी। एक दिन बहुत देर हुई और लेनिन न आए तो लोग चिन्तित हुए, तलाश मची। बड़ी तलाश के बाद भी कुछ पता न लगा। और हताश तलाश करने वालों ने अन्त में देखा कि लेनिन छोटे मकान में उस वक्त वहीं रहने वाले एक रुग्ण साथी प्रेओ-ओजेन्स्की के साथ लिपट कर खड़े थे, दोनों बेतहाशा रो रहे थे। दोनों पुराने क्रान्तिकारी साथी थे, दोनों बीमार थे, दोनों सम्भवतः जानते थे कि इस संसार में उन्हें अब अधिक नहीं रहना है। जाने क्या-क्या उनकी घण्टों बातें हुईं, और फिर दोनों बहुत रोए, बहुत रोए।

तो लेनिन जहाँ चिर-निद्रा में मग्न हुए वह उद्यान-भवन अब पावन तीर्थ-स्थल हो गया है। सन् १९२४ से लेकर अब तक सोवियत देश के और सकल संसार के लाखों-लाख मानव वहाँ जा चुके हैं। और यह ताँता बन्द नहीं होता, बन्द नहीं होगा।

हम जब उस घर में घूम रहे थे तो रूसी कम्युनिस्ट पार्टी के पत्र 'प्रावदा' के एक अंक में प्रकाशित उनका एक लेख दिखा। मार्च, १९२३ में प्रकाशित प्रावदा का वह ४९ वां अंक था। लेनिन ने संसार में पूंजीवाद और साम्यवाद के बीच चलने वाले संघर्ष का सिंहावलोकन करते हुए लिखा था : "अंततोगत्वा आज के संघर्ष का निर्णय इस बात पर निर्भर होगा कि रूस, भारत व चीन और ऐसे ही अन्य देशों में संसार की आबादी का अपार बहुमत है।"

लेनिन की मृत्यु के लगभग तैंतीस वर्ष बाद गत वर्षों में भारत, रूस व चीन की बढ़ती हुई मैत्री और पारस्परिक सहयोग, और विश्व शान्ति के लिए इनका संयुक्त प्रयास महान् लेनिन की दिव्य भविष्य दृष्टि को सिद्ध करता है।

फेस्टीवल उद्घाटन और "द्रूशबा" "मीर"

मास्को के विशाल लुज़निकी स्टेडियम की बात है। एक लाख के वहाँ बैठने की जगह है और एक लाख मानव वहाँ बैठे थे। मानव, मानव चारों तरफ़ मानव ही दीखते थे। सहसा एक संगीत लहर उठा। एक दबी, गहरी, पीर-भरी आवाज थी, मानो पुकार रही थी कि देखो तूफान है, कष्ट है, हम अस्ति हैं। और फिर वह ध्वनि और दबी, गहरी हो गयी, जैसे अधीर मन की पीर चीख उठी। अन्तस्तल की सम्पूर्ण शक्ति को संजोकर पुकार उठी। असह्य दुःख और वेदना से त्रस्त हो किसी ने वह पीर-भरी आवाज़ निकाली, पर फिर वह मनःस्थिति ठहरी नहीं, वाणी में शक्ति आयी, ओज आया, वह गम्भीर, गहन-गहन हो गया, और फिर संगीत की वह ध्वनि तेजी से आगे बढ़ने लगी; जैसे अदम्य, अजेय, निर्भीक मानव ऊँचे-ऊंचे डग भरता अबाध गति से अग्रसर होता हो। संगीत ने बैठे मानवों का हृदय पकड़ा, सम्पूर्ण स्टेडियम में तालियाँ गड़गड़ा उठीं।

यह चायकोवेस्की का संगीत था। संगीत का सिलसिला बराबर चलता रहा। तब दिन के दो बजे थे, रात नौ बजे तक कार्यक्रम चला। बात २८ जुलाई की है, जिस दिन छठे विश्व युवक समारोह का उद्घाटन हुआ। फेस्टीवल में सम्मिलित होने वाले लगभग १३१ देशों के प्रतिनिधि-मण्डल जुलूस बनाकर स्टेडियम आ रहे थे। उसी का इन्तज़ार था। अजब समां था। पिछले दिन पानी बरसा था, सुबह भी बादल थे, सब चिन्तित थे कि पानी बरसा तो उद्घाटन समारोह चौपट हो जाएगा। पर दोपहर होते बादल गुम हो गये, तेज़ सूर्य निकल आया, मानो प्रकृति ने भी शान्ति की सद्भावना से

एकत्रित विश्व के युवकों के साथ सहयोग किया।

और एकदम से उन एक लाख बैठे मानवों का ध्यान एक कबूतर की ओर गया। विशाल स्टेडियम के सुन्दर हरे-हरे मैदान के चारों तरफ बैठी जनता के एक अंग के निकट पूँछ में लाल गुब्बारा बाँधे एक कबूतर उड़ रहा था। वह उड़ा कुछ देर, उसके साथ वह उड़ता लाल गुब्बारा बड़ा अच्छा लगा, पर फिर थक कर जहाँ लान पर फेस्टीवल-आयोजकों के लिए कार्पेट बिछा था वहाँ बैठ गया। एक व्यक्ति पकड़ने को बढ़ा तो वह सटाक से उड़ गया। सारा स्टेडियम हँस पड़ा। और वह कबूतर भौचक-सा, घबड़ाया हुआ फिर उसी कार्पेट पर बैठ गया। जब वह व्यक्ति फिर उसे पकड़ने गया तो वह उड़ा अवश्य, पर पकड़ में आ गया। लाल गुब्बारा उसकी पूँछ से तोड़ दिया गया और वह देखते-देखते तेजी से उड़ता हुआ, आजादी की ओर, स्वतन्त्रता की ओर ऊपर आस्मान में ऊँचे पहुँच गया। सारे स्टेडियम में जोर की हँसी हुई, करतल ध्वनि हुई, उस जीवात्मा के कष्ट का खत्म होना, उसका स्वतन्त्रता से गगन में विचरण करना जनता को भाया।

और अब स्टेडियम पर एक भारतीय रेकार्ड का संगीत छा गया था, जो गाना रूस में सम्भवतः हर कोई जानता है—'आवारा' का गाना, "मैं आवारा हूँ, मैं आवारा हूँ।" अगल-बगल बैठे कुछ रूसी धुन में धुन मिला कर गुनगुनाने लगे। दो बज चुका था, जनता प्रतीक्षा में बैठी थी कि विश्व-युवकों का जुलूस अब आता होगा। इतने में संगीत रुका और लाउड स्पीकर ने उपस्थित जनता से मार्च पास्ट शुरू होने में होने वाली देर के लिए क्षमा माँगते हुए कहा कि जुलूस मास्को की सड़कों पर आगे बढ़ नहीं पा रहा है। मास्को के नागरिक प्रतिनिधि-मण्डलों को घेरे हुए थे, आगे बढ़ने

ही नहीं देते थे, जनता उन पर अपना स्नेह और प्यार उड़ेल रही थी और जुलूस की रफ्तार बहुत धीमी थी।

विशाल स्टेडियम में बैठने की जगह चप्पा-चप्पा भरी थी, चारों तरफ मानव और सबकी अलग-अलग आवाज ने मिल कर स्टेडियम के गगन पर एक न बंद होने वाली सागर-तट-जैसी अटू गहन ध्वनि आच्छादित कर दी थी। रूसी संगीत के रेकार्डों के बीच-बीच हिन्देशियाई, चीनी, मिश्री, हिन्दुस्तानी तथा कई यूरोपीय देशों के रिकार्ड भी बजते थे। तीन बजने में कुछ मिनिट बचे थे कि सोवियत नेता ख्रुश्चेव, वोरोशिलोव तथा बुलगानिन अन्य नेताओं के साथ वहाँ पधारे। जनता ने करतल ध्वनि से उनका स्वागत किया।

और ठीक तीन बजे वह प्रतीक्षित घड़ी आ पहुँची। सब से पहले आस्ट्रेलिया के प्रतिनिधियों का जत्था अपने झंडे के साथ स्टेडियम में दाखिल हुआ। और फिर लगभग ढाई तीन घण्टे तक यही सिलसिला रहा। एक के बाद दूसरे अगणित देशों के नवयुवकों के प्रतिनिधि-मण्डल अपने झंडों के साथ, नाचते-गाते, हाथ हिलाते स्टेडियम के विशाल मैदान के चारों तरफ बने चौड़े पथ पर निकले। सब के सब इस प्रकार स्टेडियम का एक चक्कर लगा कर घास वाले मैदान में एक सिलसिले से खड़े होने लगे। नेदरलैंड्स और नारवे, बेलजियम, फिनलैंड, आर्जेन्टाइन और चिली, मिश्र और सीरिया, फ्रांस और दोनों जर्मनी, ब्रिटेन और संयुक्त राज्य अमरीका, चीन और भारत, बर्मा और हिन्देशिया, मेक्सिको और कनाडा, उरुग्वे और घाना, हाइती और सुरिनाम और आइसलैंड, वेनेजुएला और इटली, हंगरी और चेकोस्लोवाकिया, गर्ज कि संसार के चारों कोने के, पाँचों महाद्वीपों के नवयुवक उस मार्च पास्ट

में निकले।

वह अद्भुत अलौकिक दिवस था। ३४,००० से अधिक समारोह-प्रतिनिधियों की लारियाँ लुज़निकी स्टेडियम से लगभग १३ मील की दूरी पर स्थित मास्को की विश्वविख्यात कृषि-प्रदर्शनी से रवाना हुई थीं। उनके स्वागत के लिए बीस लाख मास्को निवासी रास्ते की सड़कों पर खचा-खच भर गये थे। प्रतिनिधियों का जुलूस उस प्रेम के सागर के बीच कछुए की-सी चाल से रेंगता हुआ ही निकल सका, मार्ग में तीन घण्टे से अधिक लग गया। शोर मचाते हुए उस उल्लासपूर्ण जन-सागर ने अपने स्नेह में सब मेहमानों को डुबा दिया। सूर्यदेव प्रखर रूप में थे, और मास्को के उस दिन के चमकीले सूर्य की रोशनी ने मास्कोवाइटों से घिरी उन सजी लारियों और देश-देशान्तर का रंगबिरंगी वस्त्र पहने उन पर बैठे युवकों और युवतियों को अजब छटा प्रदान कर दी थी। और मास्को निवासी सब ही "द्रूशबा" (मैत्री) और 'मीर' (शान्ति) चिल्लाते हुए लारियों पर सवार अतिथियों से हाथ मिलाने पर आमादा थे। वास्तव में सारा जुलूस ही एक विराट् हथमिलौवल प्रदर्शन हो गया। मास्को निवासियों की अपार भीड़ को नापने में आँखें असमर्थ थीं। लोग छज्जों और छतों पर खड़े थे, मास्को के पुलों पर जहाँ कहीं भी पाँव टिकाने की जगह मिली वहाँ भारी जोखिम उठाते हुए लटक रहे थे और राजधानी की सड़कों, चौकों और पटरियों पर उमड़ आये थे। हर एक की आँखों में चमक थी, हर एक के दिल में उल्लास-भरा स्पन्दन था।

"द्रूशबा" और "मीर" की वह शक्ति विशाल लुज़निकी स्टेडियम में पूर्णरूप से मूर्तिमान हो गयी। स्टेडियम के चारों ओर संसार के प्रायः सभी देशों के झंडे लहरा रहे थे, और उनके नीचे

चलने वाले विश्व के युवक-युवतियों और बैठे हुए एक लाख मास्को-वाइटों में हमने यह शक्ति देखी।

दिन बड़ा सुहावना हो गया था। सूर्य की रोशनी थी, पर कुछ सफेद फेनिल बादल भी आसमान में बिखर गये थे। जहाँ देखो गाने, मुस्कान, हँसी और फूल बरस रहे थे। प्रतिनिधियों का जाज्वल्यमान जुलूस गाता-बजाता, नाचता-कूदता लुज़निकी स्टेडियम में चल रहा था। धीरे-धीरे सब प्रतिनिधि स्टेडियम में पहुँच गये और मैदान में सिलसिले से खड़े हो गये। उस समय मास्को के शान्तिपूर्ण आकाश की नीलिमा-तले असंख्य रेशमी ध्वजाएँ बहुवर्ण धाराओं में बह-सी निकलीं। और फिर शान्ति के प्रतीक हज़ारों सफेद कबूतर लुज़निकी स्टेडियम में उड़ाये गये। और इस प्रकार सफेद कबूतरों का जब बादल-सा ऊपर छाया तो ऐसा लगा कि मानो शान्ति और मैत्री के प्रतीक उन हिमशुभ्र पंछियों की कान्ति में सभी देशों की ध्वजाएँ विलीन हो गयीं, सब राष्ट्रीय ध्वजाएँ बीसवीं सदी की विश्व-जनता की इकट्ठी आवाज़ "शान्ति" के इस महा प्रदर्शन के पीछे अपनी सम्पूर्ण शक्ति के साथ कतार बाँध कर खड़ी हो गयीं।

विभिन्न देशों के प्रतिनिधि-मण्डल अपनी-अपनी सजावट, अपने-अपने ठाठ से स्टेडियम में निकले। कुछ देशों के प्रतिनिधि मण्डल में दो हज़ार या उससे भी अधिक युवक थे। यथा, चीन और ब्रिटेन। फिर चार सौ और पाँच सौ के प्रतिनिधि-मण्डल थे। फिर दर्जन और आधे दर्जन लोगों के भी प्रतिनिधि मण्डल थे, और एक देश का तो केवल एक ही प्रतिनिधि था, जो दृढ़ता से अपना झंडा थामे अकेले बढ़ रहा था। बड़े देशवालों या बड़े प्रतिनिधि-मण्डलों का तो स्वागत मास्कोवाइटों ने किया हो, पर इन छोटे-छोटे प्रतिनिधि-मण्डलों के लिए उनके हृदय की गर्मी कम नहीं थी। उदाहरणार्थ,

विशाल स्टेडियम के जिस तरफ भी वह एकमात्र प्रतिनिधि निकला, उपस्थित रूसी जनता ने चीख कर, चिल्ला कर और तालियाँ पीट कर उसका हार्दिक अभिनन्दन किया, मानो ऐसे बता दिया कि यह मत समझना कि तुम अकेले हो, तुम हमारे हो, हम, हमारी पूरी शक्ति तुम्हारे साथ है।

यह सर्वसम्मति से स्वीकृत हुआ कि सबसे भव्य जुलूस चीनी प्रतिनिधि-मण्डल का था। सम्भवतः वे तीन या चार हज़ार थे। पूरी तैयारी से वे आये थे। उनके जुलूस का विधिवत् आयोजन था। उन्होंने एक साथ कागज़ की हज़ारों झंडियाँ हिलायीं। फिर एक साथ कई गुब्बारे उन्होंने छोड़े। चीनी को रूसी 'किताई' कहते है और चीनी जुलूस के स्टेडियम में दाखिल होते ही "किताई" "किताई" की आवाज़ चारों ओर फूट पड़ी। किताइयों द्वारा छोड़े हुए चमकीले गुब्बारे मैदान के ऊपर उडे और हवा में बहते हुए एक ओर चले। और कई गुब्बारे थे जो लटकते हुए एक कपड़े पर चीनी भाषा में लिखा सन्देश लिये गगन में जा रहे थे। वह किताई युवकों के हृदय से निकला हुआ सन्देश था। उसका अर्थ समझने के लिए चीनी संकेत-लिपि की जानकारी जरूरी नहीं थी। सन्देश का तात्पर्य स्पष्ट था—युवकों की एकता शान्ति को सुनिश्चित करेगी, शान्तिपूर्ण भविष्य को सुनिश्चित करेगी। और फिर पचास फीट से भी लम्बा एक चीनी ड्रैगन किताइयों ने जुलूस में फैला दिया, और ड्रैगन भी नाचता-हिलता जुलूस के साथ चला।

किताई का रूस में कितना आदर है, यह स्पष्ट है। स्वाभाविक भी है, आखिर रूस के बाद कम्यूनिस्ट होने वाला वह ही दूसरा महान् देश है। स्वभावतः मास्कोवाइटों ने उनका गहरा स्वागत किया। और जब भारतीय आये तो भी स्टेडियम हर्ष-ध्वनि से और

तालियों की गड़गड़ाहट से मानो हिल उठा। भारतीय रूसियों को इतना प्यारा जो है। और भारतीय प्रतिनिधि-मण्डल की एक बात का रूसियों पर उस दिन बड़ा असर पड़ा। हिन्दुस्तानी प्रतिनिधि-मण्डल स्टेडियम का चक्कर लगा कर सिलसिले से मैदान में खड़ा हो गया था। उसके कुछ देर बाद पन्द्रह बीस पाकिस्तानी युवकों का जुलूस उनके सामने से गुज़रा। पाकिस्तानी सरकार दुनिया की सम्भवत: उन आधी दर्जन सरकारों में से है, जिसने पाकिस्तान से मास्को विश्व समारोह में सम्मिलित होने के लिए किसी को इजाज़त नहीं दी। फिर भी यह पन्द्रह-बीस पाकिस्तानी युवक वहाँ पहुँचे। तो जब पाकिस्तानी प्रतिनिधि-मण्डल भारतीय प्रतिनिधि-मण्डल के सम्मुख से निकला तो डट कर भारतीयों ने उनका गहरा अभिवादन किया। भारत-पाक दोस्ती जिन्दाबाद के नारे लगे। और पाकिस्तानी जवानों ने भी इतनी ही गर्मी से इस-मैत्री-भाव का उत्तर दिया। सब जानते हैं, रूसी जानते हैं कि भारत और पाकिस्तान के पारस्परिक सम्बन्ध मैत्रीपूर्ण नहीं हैं। अपने पड़ोसी के प्रति भारत द्वारा इस मैत्री के प्रदर्शन ने रूसियों का दिल पकड़ा।

यह दृश्य कुछ देर पहले ही घटित होने वाले एक दूसरे दृश्य से बहुत विभिन्न था, और इसीलिए सम्भवत: उसने इतना ध्यान आकर्षित किया। बात यह हुई। ब्रिटिश और फ्रान्सीसी साम्राज्य-वादियों के जघन्य आक्रमण को विफल करने की महान् अग्नि-तपस्या से तप कर निकलने वाले मिश्र के नौजवानों का जोश भरा जुलूस प्रेसिडेण्ट नासिर का विशाल चित्र लिये हुए निकल चुका था और मैदान में खड़ा था। थोड़ी देर में इज़रायल का छोटा-सा जुलूस सामने से निकला और मिश्र के प्रतिनिधि-मण्डल के सामने थोड़ी देर ठहरा। और मिश्री तब गले की पूरी आवाज से "नासिर, नासिर,

नासिर" की रट लगाने लगे। "नासिर"—यह शब्द उनके मुख से एक युद्ध-घोष के समान निकल रहा था। उसमें ओज था, क्रोध था, शक्ति थी। इज़रायली भी शायद कुछ बोले, पर थोड़े थे, और मिश्रियों के "नासिर", "नासिर" के आगे उनका कुछ सुनायी भी न पड़ा। वातावरण में एक तनाव-सा आ गया। पर चन्द मिनिटों बाद जुलूस बढ़ गया और वह क्षणिक-सा तनाव शीघ्र' 'द्रूशबा" और "मीर" के उस प्रचंड वातावरण में विलीन हो गया।

संयुक्त राज्य अमरीका का प्रतिनिधि-मण्डल लगभग अन्त में आया। थोड़े-से लोग थे, सम्भवतः तीन-चार दर्जन से अधिक नहीं। विश्व शान्ति आज सबसे अधिक रूस और संयुक्त राज्य अमरीका पर निर्भर है। तो वह एक खास अवसर था। और कितना स्वागत किया उनका बैठी जनता ने। खूब तालियाँ, "द्रूशबा" और "मीर" की खूब आवाजें। और जब अमरीकी प्रतिनिधि-मण्डल ख्रूश्चेव, बुलगानिन इत्यादि नेताओं के सम्मुख पहुँचा तो खड़े होकर सब युवकों ने रूसी नेताओं का गहरा अभिवादन किया, खूब चिल्लाये, खूब हाथ हिलाया। और ख्रुश्चेव व बुलगानिन ने भी खड़े होकर उनका अभिवादन स्वीकार किया, अपने हाथ हिलाये। वह हृदयग्राही दृश्य था। हमने देखा, बगल में बैठे रूसी युवकों के नेत्र पसीज गये। कुछ के आँसू गालों पर बह निकले।

और अन्त में सोवियत देश का प्रतिनिधि-मण्डल आया, निश्चय ही सबसे विशाल और सबसे श्रेष्ठ। सैंकड़ों रंग-बिरंगे झंडे थे, रूस की सब अल्प जातियों की युवक-युवतियाँ थीं, गहरा अनुशासन था। और जनता ने, विदेशी प्रतिनिधि-मण्डलों ने और नेता-मण्डली ने उनका बड़ा स्वागत किया। "द्रूशबा" और "मीर" से गगन गूँज उठा।

सोवियत प्रतिनिधि-मण्डल के आने के बाद उस दिन का मार्च पास्ट समाप्त हुआ। और तब सोवियत संघ के अध्यक्ष वोरोशिलोव ने एक संक्षिप्त भाषण दिया। उन्होंने सबका स्वागत किया। उन्होंने कहा-"हम आप सबका, जैसे आप हैं, उसी रूप में स्वागत करते हैं। हम मानते हैं कि हर देश को अधिकार है कि वह जैसे चाहे अपना विकास-पथ निश्चित करे। हम अपने विचार दूसरों पर नहीं लादना चाहते। हम सबों को एक साथ रहना है। हम सबों को शान्ति की जरूरत है।"

अवसर के अनुरूप वोरोशिलोव का भाषण था और उसका गहरा स्वागत हुआ। तब थोड़ी देर के इण्टरवल के बाद लगभग सात हज़ार रूसी युवक-युवतियों ने उस विशाल मैदान में खेल-कूद और करतब दिखाये। वह भी हृदयग्राही था, अद्भुत, अलौकिक था, और पूरा समारोह खत्म होते रात के लगभग नौ बज गये।

इस प्रकार वह अविस्मरणीय दिवस समाप्त हुआ। उस दिवस का अनुभव वर्णनातीत है। जो भी उपस्थित था, आजीवन उस दिवस को नहीं भूल सकता। उसकी अमिट छाप जीवन-भर रहेगी, यह निश्चित है। यह शान्ति, जवानी और मैत्री की विराट् परेड थी। हमको टैंक और सिपाही नहीं दिखे, हमने फूलों और मुस्कानों का सागर देखा। सर्वत्र स्नेह-भावना से छलछलाता यौवन था, और कभी ऐसा लगा कि कहीं हम स्वप्न तो नहीं देख रहे हैं। उस दिन 'द्रूशबा' (मैत्री) और "मीर" (शान्ति) की विश्वव्यापी अजेय शक्ति वहाँ दिखी। उस दिन विश्वास हुआ कि जब शान्ति की सुरक्षा का कार्य विश्व के युवकों ने अपने मजबूत कंधों पर उठा लिया है, तो निश्चय ही संसार में शान्ति सुनिश्चित है।

"हम कालों से, शोषितों से और भी प्यार करते हैं"

लुज़निकी स्टेडियम में उस दिन अफ्रीका के हब्शी (नीग्रो) भी निकले थे। कई देशों से वे आए थे, और पूरे मार्च पास्ट में उनके लगभग तीन चार दल थे। पहला दल छोटा था, लगभग डेढ़ दर्जन नीग्रो युवक और युवतियां। आगे पाँच-छः नीग्रो रमणियाँ थीं, बिलकुल श्यामवर्णा, और नीग्रो नृत्यों की विशिष्ट मंथरगति के अनुरूप मटकती-नाचती वे चल रही थीं। फिर एक दर्जन नीग्रो युवक थे, कुछ कोट-पतलून में, कुछ हब्शी राष्ट्रीय पोशाक में। काले चेहरे पर मोटे ललाई लिये हुए ओंठ, और तेज़ चमकदार आखें और सब हौले-हौले बढ़ रहे थे।

वे नाचते-गाते जा रहे थे, पर उनके चेहरे का दुःख जो स्पष्ट झलकता था। उनको इन्सान कहाँ समझा गया? गौरांगों ने उनके देशों पर आक्रमण किया, उनको बर्बर-जंगली कहकर पशुओं जैसा उनसे व्यवहार किया, उनको गुलाम बनाकर उनका क्रय-विक्रय किया, उनको मानव कब समझा गया? तो युगों की पीड़ा नाचते-गाते, आगे बढ़ते उन डेढ़ दर्जन नीग्रो युवक-युवतियों के चेहरे पर स्पष्ट झलकती थी। और आज भी 'सभ्य' देश संयुक्त राज्य अमरीका में गोरी स्त्री के साथ सड़क पर दिखाई पड़ने वाला नीग्रो गोरी भीड़ों द्वारा लिंच कर दिया जाता है, उसकी दिन-दहाड़े निर्मम हत्या हो जाती है।

तो गौरांगों द्वारा पशु-सम समझे जाने वाले यह हब्शी अपनी वेदना व्यथा को लिये, नाचते-गाते निकले, गौरांगों के ही सम्मुख। पर यह कैसा गौरांग था? उन कालों ने क्या कभी ऐसी कल्पना भी की थी कि गौरांग ऐसे भी हो सकते हैं?

बहुतों के नेत्र सजल हुए उस समय लुजनिकी स्टेडियम में, बहुतों के आँसू गालों पर बहे। स्टेडियम में बैठा रूसी सबका ही स्वागत करता था, सबके स्वागत में गर्मी थी, भारत, चीन इत्यादि कुछ देशों के स्वागत में कुछ अपनी विशेषता थी—यह सब ठीक है पर उन डेढ़ दर्जन हब्शियों के लिए उन एक लाख रूसी गौरांगों ने जिस तरह अपना चौड़ा कलेजा खोला वह कुछ अजब निराला था। गगन को चीरती एक बड़ी शक्तिशाली, गहन गम्भीर हो हो होऽऽऽऽ ध्वनि निकली, और देर तक वह टंकारदार हो हो ऽऽऽऽ लुजनिकी स्टेडियम पर उमड़ती रही। और तब तालियाँ बजीं, बजीं और बजती ही रहीं। पटापट तेज़ मज़बूत आवाज़। और मन्थरगति से थिरकतीं वे नीग्रो रमणियाँ झपकतीं-दपकतीं, शर्मातीं, कुछ घबड़ाई आगे बढ़ रही थीं।

क्या उन्होंने सोचा होगा कि यह कैसी गोरी दुनिया है? कि यह गोरे-गोरे रूसी कैसे कलेजे के लोग हैं? कि हमारे लिए इनके हृदय में इतनी सहानुभूति कहाँ से समा गई? कि किसने इन्हें पढ़ाया कि हम डेढ़ दर्जन काले अकिंचनों के आगे इस तरह अपना कलेजा बिछा दो?

हम नहीं जानते उन डेढ़ दर्जन व्यक्तियों के मन पर क्या बीती, पर हम जैसे काले देशों के लोग, पाश्चात्य गोरी साम्राज्यशाही से त्रस्त, कुचले हुए उपनिवेशों के लोग, जो वहाँ बैठे थे निश्चय ही रोए, निश्चय ही हमारे गले रुँधे। वह दृश्य ही ऐसा था। इतने विशाल,

शक्तिशाली सोवियत देश वालों के हृदय में कालों के लिए, शोषितों के लिए इतनी जगह है, उनका इतना प्यार इनके लिए है और इतना सच्चा, सीधे हृदय से निकलने वाला, स्वार्थरहित प्यार। जरूर उस समय बहुत गले रुँधे।

हमको अमरीका के विश्वविख्यात नीग्रो गायक पाल रोबसन की याद आई। वर्षों पूर्व पाल रोबसन रूस गए थे। अमरीका में नफरत से भरो गोरो आँखों से परिचित रोबसन को मास्को में स्नेह से भरी गोरी आँखें मिलीं। पाल रोबसन अचम्भित थे। लौटने पर कहीं अपना रूसी अनुभव बताते हुए उन्होंने कहा : "क्या आप विश्वास करेंगे, रूस में गोरे बच्चों ने मुझे चूमा ?"

कालों के लिए रूस देश में कितनी सहानुभूति है, कितना प्यार है, इसके हमने अनेकानेक उदाहरण देखे। हमको यह बात बड़ी खास लगी और हमने ध्यान से इसे समझने की कोशिश की। एक तो लम्बे-लम्बे सिद्धान्तों की बातें होती हैं, मुख से पूरी सहानुभूति जताने की बात होती हैं। यदि पूरी बात मौखिक ही हो, हृदय की असली भावना न हो तो कालों से किए गये व्यवहार में जरूर ऊपरीपन झलकेगा, कोई इसके विपरीत कितना भी प्रयास करे। और जब भी हमने हब्शियों को रूसियों के बीच देखा, जब भी भारत, बर्मा, हिन्देशिया जैसे नवस्वतन्त्र कुछ दिन पहले के औपनिवेशिक, अविकसित देशों के प्रतिनिधियों के प्रति रूसियों का व्यवहार दिखाई पड़ा तो उसमें यह ऊपरीपन कभी न झलका। उनका व्यवहार सच्चाई, स्नेह, आदर से ओत-प्रोत होता था, बनावट का, दिखावट का उसमें नाम नहीं।

रूसी मित्रों से हमने जरूर इस बात की चर्चा चलाई। हमने

कहा कि हम हिन्दुस्तानी अपने बचपन में यही समझते थे कि गोरे रंग का यदि कोई है तो अवश्य समृद्ध है, अवश्य लाट साहब है, उसके विनम्र होने का, छोटों के प्रति स्नेह या दयाभाव रखने का प्रश्न ही नहीं है। हमने कहा कि इंगलिस्तान से जो भी गोरा भारत आया, भले वह धोबी रहा हो, भले वह लंडन की सड़कों पर जूते चटकाता घूमता मरभुक्खा रहा हो, पर हिन्दुस्तान में वह धन्नासेठ ही रहा, और हम हिन्दुस्तानी तो यही समझे कि गोरा माने ऊँचा, गोरा माने समृद्ध, और गोरा माने आततायी, अत्याचारी। रूसियों ने हमारी बातों को ध्यान से सुना। उनको यह जानकर ताज्जुब हुआ कि हिन्दुस्तान में ब्रिटिश शासकों को कोटि-कोटि जनता ने 'अंग्रेज' करके नहीं जाना, वरन् उनको 'गोरा' कहा जाता था।

और हमने कहा कि यहाँ भी हम वही 'गोरों' को देखते हैं, पर कितने भिन्न हैं यह 'गोरे' उन 'गोरों' से जिनको हम जानते हैं। रूसियों ने हमारी बातें ध्यान से सुनीं। और उन्होंने कहा—हम को यही शिक्षा दी गई है कि सारी मानव जाति एक है, किसी के चमड़े के रंग से कोई भेद नहीं होता। और हमको हमारे समाजवादी देश ने बताया है कि सब शोषित लोग, सब दबे-पिसे लोग हमारे साथी हैं, हमारे भाई हैं। और फिर हमने यह जुमला भी सुना: "जो जितना शोषित है, जो जितना काला है, उससे हम उतना ही स्नेह करते हैं। हम कालों से, शोषितों से और भी प्यार करते हैं।"

हमने कई अवसर ऐसे देखे जब किसी थियेटर या सिनेमा हाल में, या किसी अन्य ऐसी ही जमघट की जगह, जब सब सीट भर गई थीं, कुछ नीग्रो आए। हमने देखा कि सीटें खाली कर उनको अपने

बगल में स्थान देने में रूसी स्त्रियों और युवतियों में होड़-सी मच गई। मास्को में, लेनिनग्राड में, बाकू में, कीव में, हमने देखा कि जब हब्शी सड़क पर निकले तो गुलाब के फूल जैसी सुन्दर गोरी सोवियत युवतियों ने उनको घेर लिया, और उनका हाथ अपने हाथ में लेकर घूमने के लिए उनमें होड़ मच गई। हमारे अन्दर भले रंगभेद का एहसास हो, पर वहाँ तो इसका एहसास ही नहीं है, वहाँ तो कोई 'काले' और 'गोरे' के ढंग पर सोचता ही नहीं। सारा का सारा राष्ट्र इसी प्रकार सुशिक्षित है।

एक रात एक थियेटर में अफ्रीकन गाला नाइट का आयोजन था। यानी उस दिन विश्व युवक समारोह में आए हब्शियों का विशद सांस्कृतिक कार्यक्रम था, करीब तीन घण्टे का। थियेटर में तीन हजार से अधिक सीटें नहीं थीं, पर बाहर हजारों मास्को निवासी उत्कंठा से खड़े थे कि किसी प्रकार अन्दर जाने को मिले। शुरू में एक नीग्रो प्रोफेसर ने हब्शी संगीत एवं नृत्य कला पर एक संक्षिप्त और सारगर्भित भाषण दिया। उन्होंने कहा कि हम लोग प्रकृति के साथ नाचते-गाते बड़े होते हैं। हमारी माँएँ बच्चों को नृत्य के माध्यम से शिक्षा देती हैं। हमारे संगीत और नृत्य में प्रकृति की पूरी छाप होती है, हम वस्तुतः प्रकृति के ही बेटे हैं।

वह संक्षिप्त और सुन्दर भाषण था और खूब उसका स्वागत हुआ। और अन्त में उस नीग्रो प्रोफेसर ने बड़ी भावना से कहा: "हमारे अफ्रीका पर साम्राज्यवादियों ने पाशविक अत्याचार किए हैं, हम दबाए गए। पर अब वह वक्त आ गया है जब इतिहास के मंच पर अफ्रीका को उसका उचित स्थान मिलना ही होगा।" और फिर उसने कहा: "सोवियत देश ही औपनिवेशिक देशों की शोषित जनता का सबसे गहरा और मजबूत दोस्त है। यहाँ किसी प्रकार की रंग-

भेद की भावना नहीं है। सोवियत जनता संसार की स्वतन्त्रता-प्रेमी जनता की अग्रिम पंक्तियों में है।''

भाषण के बाद हब्शियों का गायन और नृत्य शुरू हुआ। स्पष्ट था कि वे शर्मा रहे थे, झपक रहे थे। काहे कभी उन लोगों ने इतने भव्य स्टेज पर इतने अधिक दर्शकों (सो भी गोरों) के सम्मुख नाचा-गाया हो। निश्चय ही कार्यक्रम का पहला आइटम ऐसा वैसा ही अंजाम दिया गया। स्टेज के लोग घबड़ाहट, शर्माहट और आँखें उठा कर सीधे दर्शकों की ओर देख भी न पाते थे। पर इससे क्या होता है? दर्शकों ने जाना, और नीग्रो कलाकार समझे ही होंगे कि पहला कार्यक्रम तो गड़बड़ ही रहा। पर फिर क्या? पहला आइटम खत्म होते ही उपस्थित रूसियों ने घमाघम ताली बजाई, खूब जोर वाली, कि नीग्रो कलाकार यह न समझें कि वे असफल रहे, जान जायँ कि दर्शकों को इनका काम पसन्द आया।

फिर दूसरा आइटम सामने आया। पहले एक नीग्रो गायन था, दूसरा एक नृत्य। इसमें भी झपक थी, शर्माहट थी, कलाकारों में आत्मविश्वास की कमी थी, दर्शकों को सीधे देखने के बजाय नेत्र नीचे थे। पर इससे क्या? वह बड़ा समझदार, जाग्रत दर्शक-समूह था। और आइटम खत्म होने पर फिर जबरदस्त गड़गड़ाती करतल ध्वनि हुई, 'ब्रावो' 'ब्रावो' की हिम्मत धराने वालीं आवाजें लगीं, और फिर रूसी थियेटरों की जनता की विशिष्ट प्रकार की 'पट्ट' 'पट्ट' तालियाँ देर तक बजतीं रहीं।

अर्थ स्पष्ट था। हाल में बैठी तीन हजार रूसी जनता ने मानो कहा—कालो, क्या घबड़ाहट है, क्या परेशानी है, क्यों झपकते हो? तुम अच्छे हो, तुम्हारी कला बहुत अच्छी है, तुम खूब काम दिखा रहे हो, हम सब उसे पसन्द करते हैं, मत घबड़ाओ, चलो, विश्वास के साथ

आगे चलो, तुम ठीक हो, तुम श्रेष्ठ हो। सारी जनता उन हब्शियों को बढ़ावा देने पर आमादा थी। उन दबे, पीड़ित, शोषित मानवों का कठिन प्रयास वे दर्शक खूब समझते थे और जैसे-जैसे एक के बाद दूसरा कार्यक्रम स्टेज पर दिखाया गया वैसे-वैसे तालियों द्वारा, आवाजों द्वारा तीन हज़ार रूसियों ने अपनी शक्ति को, अपने प्रेम और स्नेह के बल को हब्शी कलाकारों तक पहुँचाया और पहला घण्टा समाप्त होते-होते पूरे कार्यक्रम में प्रारम्भिक शर्म और झपकन दूर हो गई। रूसी दर्शकों से संचारित शक्ति ने कलाकारों को बल और आत्मविश्वास दिया, और बाद के दो घंटे के कार्यक्रम में जबर-दस्त ओज था। संगीत तब हृदयग्राही लगा, नृत्य में नई तेजी आई, और जब हम कार्यक्रम समाप्त होने के बाद वहाँ से चले तो लगा कि हाँ हमने सच में एक विशिष्ट कला देखी, जिसमें बड़ी विशेषताएँ हैं, जो किसी से भी हेय नहीं है।

रूस देश की बहुत बातें याद आती हैं, वहाँ की अनेकानेक चीजें आश्चर्यचकित करने वाली हैं, पर सबसे अधिक हम सारे के सारे सोवियत नागरिकों में कालों के लिए, शोषितों के लिए व्याप्त सहानु-भूति और स्नेह को ही याद करते हैं। एक व्यक्ति यहाँ और एक शोषितों का प्रेमी वहाँ—यह बात नहीं। यह भावना सम्पूर्ण सोवियत देश की है, प्रत्येक सोवियत नागरिक की है। सोवियत बालक बचपन से सारी मानवता से स्नेह करने की शिक्षा पाता है, उसे बताया जाता है कि संसार में साम्राज्यवाद अनेकानेक देशों को दबाता है, उनका शोषण करता है, और वे साम्राज्यवादी आततायियों से संघर्ष करते हैं, और यह संघर्ष सोवियत जनता के सघर्ष का ही पूरक है, वस्तुतः दोनों संघर्ष एक ही हैं। और चालीस वर्ष की इसी शिक्षा का फल है कि काला और शोषित रूस में इतना आदर और इतना प्यार पाता है।

राज कपूर रूस में

राज कपूर की चर्चा रूस जाते समय एक अमरीकी पत्र 'लुक' में पढ़ने को मिली थी। लेखक थे जान गुन्थर, संसार के प्रसिद्ध अमरीकी पत्रकार-लेखक। गत वर्ष वह चौथी बार रूस गये थे और उस लेख में उन्होंने उस 'रहस्यमय दैत्य' के अपने इस यात्रा के अनुभव बताये थे। उन्होंने कहा कि मास्को में लोग सब गम्भीर से लगते हुए अपने कामों में आते-जाते दीखते हैं, इनमें भावुकता, उल्लास, जनसमूह का उभार नहीं दीखता। बस एक बार मास्को की जनता अद्‌भुत, अपूर्व रूप से एक 'भारतीय सिने अभिनेता' राज कपूर के लिए एक दम से उमड़ पड़ती दिखाई पड़ी।

हम जानते थे कि 'आवारा' बोलपट रूस में बहुत पसन्द किया गया, हम यह भी जातते थे कि राज कपूर रूस हो आये हैं, पर यह कि रूसी जनता में वे इतने लोकप्रिय हैं, हमारे लिए निश्चित ही नई सूचना थी।

पर पहले अनुभव से ही जान गुन्थर के उपर्युक्त कथन की पुष्टि मिलने लगी। ताशकन्त में ही राज कपूर का नाम बहुत सुनाई पड़ा। हम सड़क पर चलें तो साथ में मुस्कराते, दोस्ती जताते चलने वाले उजबेक और रूसी और किसी प्रकार अपने को न व्यक्त कर सकें तो राज कपूर और नर्गिस का नाम लेकर ही हँसें। सबने 'आवारा' देखा था, सब को वह भाया था, बहुतों को उसके गाने याद थे।

मास्को में यूक्रेन होटल है, मास्को नदी के किनारे। कहा जाता है कि यूरोप का सबसे बड़ा होटल है, एक हजार कमरे हैं, छत्तीस मंजिल हैं। दो वर्ष पहले वह खाली अव्यवस्थित भूमि थी। विश्व

युवक समारोह के दो महीने पूर्व वह बनकर समाप्त हुआ था। वहीं सारे संसार से आमंत्रित लगभग एक हज़ार सम्मानित अतिथि ठहराये गये थे। राज़ कपूर युवक समारोह में आ रहे हैं, यह समाचार सर्व-विदित था, लोग आने की बाट जोह रहे थे। देश-देशान्तर से आये अगणित मेहमानों के लिए भाषान्तरकार देने का रूस में सुघर प्रबन्ध है। मास्को में एक विदेशी भाषा इन्स्टीट्यूट है, जहाँ सैकड़ों विद्यार्थी विदेशी भाषाएँ पढ़ते हैं। मास्को के यही विद्यार्थीगण युवक और युवतियाँ, भाषान्तरकार का काम कर रहे थे।

इसी यूक्रेन होटल में राज कपूर भी ठहरने वाले थे, और हमने देखा कि राज कपूर का भाषान्तरकार होने के लिए रूसी विद्यार्थि-नियों में अच्छी खासी होड़ मच गई।

रूसी जनता राज कपूर पर किस तरह न्योछावर है, इसका साक्षात् पता अट्ठाइस जुलाई को लुजनिकी स्टेडियम में लगा, जिस दिन वहाँ छठे विश्व युवक समारोह का उद्घाटन हुआ। अभी युवकों का जलूस स्टेडियम नहीं पहुँचा था और एक लाख जनता उत्कंठा-पूर्वक वहाँ बैठी थी। इतने में एक फाटक से राज कपूर अपनी भाषा-न्तरकार नटाशा के साथ आये। उनके पास फिल्म लेने का कैमरा था और उनका विचार सम्भवतः घूमकर स्टेडियम में बैठी जनता की फिल्म लेना था। पर यह क्या ? राज कपूर को देखकर लोग जैसे बौरा उठे। पहले तो एक बड़ा हल्ला मचा, लोगों के उल्लास का प्रदर्शन। फिर विशाल स्टेडियम के जिस अंग के सन्मुख राज कपूर थे, वहाँ की सीटों पर तमाम लोग खड़े हो गये। फिर रूमाल और गुलदस्ते बेतहाशा तादाद में राजकपूर पर गिरने लगे और वह उन्माद भरा कोलाहल चलता ही रहा। जिस ओर भी राज कपूर निकल जायँ, यही दशा हो, मानो वह एक लाख उनको ही देखने बैठे हों।

इतनी लोकप्रियता देखकर किसी का भी रश्क क्यों न हो ? हम खुश थे, हमारा एक हिन्दुस्तानी इस दूर देश की इस जनता को इतना, इतना प्यारा ! हम जरूर खुश थे। पर फिर राज कपूर को इस प्यार की कीमत भी एक दिन देनी पड़ी, और लिये-दिये उनके साथ उनकी भाषान्तरकार नटाशा भी लपेट में आ गई। शायद बात उसी अट्ठाइस जुलाई की है। उद्‌घाटन समारोह से निकलकर जब वे अपनी मोटर की ओर बढ रहे थे तो उन पर दीवानी एक उत्साही भीड ने उनको घेर लिया। सब ही उनसे हाथ मिलाना चाहते है, स्त्रियाँ विशेष रूप से उनके बहुत पास होना चाहती हैं। तो जो भीड़ टूटी राज पर, और धक्कम-धक्का हुआ तो राज जो चुटीले हुए तो हुए, उनको बचाने मे बेचारी नटाशा की दाहिनी आँख को चोट पहुँची और आठ-दस दिन तक लाल रही, दवा लगाये, काला चश्मा लगाये बेचारी आती थी।

हम दंग थे राज कपूर की रूस में लोकप्रियता देखकर। यूक्रेन होटल के बाहर रूसी काफ़ी देर खड़े रहते कि राज कपूर कहीं जाने के लिए होटल से निकलेंगे तो उनकी झलक दिखाई पड़ेगी। राज-कपूर विश्व-युवक-समारोह स्वागत समिति की चलचित्र टुकड़ी द्वारा आमन्त्रित हुए थे। समारोह के अवसर पर एक अन्तर्राष्ट्रीय चलचित्र प्रतियोगिता का भी आयोजन था, और राज कपूर अन्तर्राष्ट्रीय जज मंडली के सदस्य थे। इस प्रतियोगिता के उद्‌घाटन की सन्ध्या थी। भव्य सिनेमा हाल में लोग आ रहे थे। सामने सुन्दर मंच सजा था। काफी हाल भर गया जब राज कपूर अपने पिताजी श्री पृथ्वीराज कपूर और माता श्रीमती पृथ्वीराज के साथ आये। उनका हाल में दाखिल होना था कि पटापट तालियाँ बजने लगीं। पचीसों कैमरा मैन चारों तरफ़ से भागकर उन्हीं के पास आ गये। पिता, माता

और पुत्र के पचीसों चित्र लिये गये। पृथ्वीराज चूड़ीदार पैजामा और कुर्ता पहने थे और उनका हृष्ट-पुष्ट शरीर और उनकी सुन्दर आकृति अवश्य आकर्षक थी। फिर उनकी साध्वी पत्नी थी। और दोनों के आगे उनका प्यारा राज था, सच में लड़का-सा लगता, सुन्दर, कोट-पतलून पहने।

रूसी सीटों पर से उठ-उठ कर देखते थे। उन लोगों का आगे बढ़ना मुश्किल हो गया। डायस पर राज का पहुँचना एक कसाले का काम हो गया। कितने युवक-युवतियों ने उठकर हाथ मिलाया, कितनों ने गुलदस्ते भेंट किये और जब उद्घाटन कार्यक्रम के बीच राज कपूर को माइक्रोफोन पर आकर बोलने को कहा गया तो हमने विचित्र दृश्य देखा। घोषणा रूसी में हुई। हमने राज कपूर सुना और कुछ रूसी शब्द सुने, पर समझ न पाये। पर इतनी ही देर में हाल समूह की हर्ष-ध्वनि से, कोलाहल से, तालियों से हिल गया। अपनी सीट से राज उठकर माइक्रोफोन की तरफ चले। तालियों की पटापट और जनता का उल्लास भी जैसे चढ़ता गया। राज माइक्रोफोन पर खड़े हुए और कुछ बोलने के लिए मुँह खोला, पर इतना शोर था कि बिना कुछ बोले मुँह बन्द कर लिया। जनता और भी खुश हुई और भी तालियाँ पिटीं।

बमुश्किल तमाम जब शान्ति हुई तो राज ने रूसी में कहा "मेरे प्यारे साथियो, मेरे दोस्तो।" बस, रूसी भाषा में इतना कहना था कि फिर सारा हाल जोरदार तालियों से गूँज उठा, और देर तक गूँजता रहा। सब रूसी खिलखिला कर हँस रहे थे। उनकी प्रसन्नता का पारावार न था। और हम हैरत में थे, अपनी भारतीयत्व पर गर्व करते बैठे थे कि हमारे भारत का एक पुत्र इनको, इस गौरांग दुनिया को इतना, इतना प्यारा कैसे क्योंकर हो गया।

राज बहुत थोड़ी देर बोले, पाँच सात मिनिट शायद, अंग्रेजी में। रूसी में हर वाक्य का अनुवाद साथ-साथ होता जाता था और हर वाक्य पर गड़गड़ाती तालियाँ बजती थीं। राज ने सीधी-सादी बातें कहीं, जो रूसी के दिल में बैठीं। उन्होंने कहा कि दुनिया में सब को दोस्त होना चाहिए, इस के लिए एक दूसरे का जीवन समझना जरूरी है, और चलचित्र का माध्यम इस काम के लिए सर्वश्रेष्ठ है।

यूक्रेन होटल में ही पहली बार राज कपूर से मुलाकात हुई। उनकी भाषान्तरकार नटाशा तीन वर्ष दिल्ली के रूसी दूतावास में रह चुकी हैं, तब ही की उनसे भेंट-मुलाकात है, और उन्होंने ही राज से परिचय करवाया। वे अति विनम्र और शाइस्ता व्यक्ति हैं। बातचीत के दौरान उनका देश-प्रेम देख बड़ी प्रसन्नता हुई। हम ने कहा: "हमको आपके ऊपर फख्र है, आपने रूस देश में भारत का इतना नाम किया है, सारा देश आप पर गर्व करेगा।" राज विनम्र थे, उन्होंने कहा: "साहब, मैं तो यहाँ दामाद से बढ़कर समझा जाता हूँ। सब इतनी मुझसे मुहब्बत करते हैं, मैं क्या करूँ। मेरी समझ में नहीं आता कि मैंने कौन-सा ऐसा कमाल किया है।"

यह राज की विनम्रता है। एक दिन और उनकी एक झलक मिली। क्रेमलिन में सोवियत रूस के नेतृत्व मण्डल ने मास्को आमंत्रित सब सम्मानित अतिथियों के सम्मान में एक विराट् पार्टी दी। भव्य क्रेमलिन का वह एक सुन्दर उद्यान था। लगभग चार हजार मेहमान, सारे संसार के प्रतिनिधि, वहाँ उपस्थित थे। क्रुश्चेव, बुलगानिन, मिकोयन, इत्यादि, इत्यादि सब ही नेता थे। खूब भड़कीली वह पार्टी थी, और मैत्री एवं सद्भाव का वायुमण्डल व्याप्त था। जो संक्षिप्त भाषण हुए, उनमें अमरीकी दूतावास के अधिकारी ने

भी सद्भाव और मैत्री की बातें कहीं। अनोखा वह पूरा वातावरण था। यहीं एक तरफ राज कपूर त्रिवांकुर, बहिनों, रागिनी और पद्मिनी के साथ खड़े थे। यहाँ भी रूसी युवक-युवतियों ने उनको घेर लिया था। और सबको चीरती एक किरगिज और एक उजबेक युवती आई, जबरदस्ती एक सेब राज के दाँतों से कटवाया, फिर उसे दोनों खुद खुश-खुश खाने लगीं।

रूस इस कदर दिलोजान से राज पर फिदा—हम हैरत से देखते रहते थे। और एक साथी भारतीय ने राज से कह ही तो दिया: "राज, हिन्दुस्तान को तो यह लोग नेहरूजी और तुम्हारे नाम से जानते हैं। रूसियों के लिए तो भारत नेहरू और राज कपूर का देश हो गया है।" राज इस पर तड़पे, उन्होंने कहा: "नहीं, इससे भी ऊपर भारत संस्कृति का देश, भारत विनम्रता का देश, भारत जो अभी प्रस्फुटित होने वाला है।" राज की बोली में शक्ति थी, ओज था, सच्चाई थी, दूर की दृष्टि थी, और आँखें चमक रही थीं। हमको पुनः अपने इस तरुण कलाकार पर गर्व हुआ।

इसी के तीन-चार दिन बाद होटल यूक्रेन के विराट् हाल में श्री पृथ्वीराज कपूर से बातें हो रही थीं। श्रीमती पृथ्वीराज भी खड़ी थीं। पृथ्वीराज मास्को 'परदेसी' फिल्म की शूटिंग के सिलसिले में आये थे। कुछ राज की ही चर्चा चली। हमने श्री पृथ्वीराज से क्रेमलिन की पार्टी में राज द्वारा कही भावनाओं को दोहराया। हमने कहा कि जनाब, खुश हूजिए, ऐसा प्रतिभावान पुत्र पाया है। श्रीमती पृथ्वीराज गद्गद् हो गयीं। हमने कहा कि हमको उम्मीद है कि रूसी जनता का इतना प्यार पाने के बाद राज को जो शक्ति मिलेगी तो वह अपने बोलपटों द्वारा, अपनी कला द्वारा, भारत की भूखी-नंगी जनता की बड़ी सेवा करेंगे। पृथ्वीराज के हृष्ट-पुष्ट लम्बे-

तगड़े शरीर के अन्दर बड़ी कोमल आत्मा है। वे भावुक और बहुत गहरे देशभक्त भी हैं। उनके नेत्र सजल हुए, उन्होंने हमको गले लगाया। उन्होंने कहा कि मेरा बेटा मेरे भारत के काम आये तो इससे बढ़कर मैं कुछ नहीं चाहता।

पिता की तृप्त गद्गद् आत्मा का एक और दृश्य कह दूँ। वही अन्तर्राष्ट्रीय चलचित्र प्रतियोगिता के उद्घाटन का दिन था। राज जब भाषण समाप्त कर गड़गड़ाती तालियों और स्नेह-उन्माद में चीख़ती रूसी जनता के शोर के बीच अपनी सीट पर बैठने पहुँचे तो उनको पृथ्वीराज की सीट के बगल से निकलना पड़ा। गद्गद् पिता ने पुत्र को गले लगाया, चुम्बन किया। और यह देख रूसी दर्शक और भी खुश हुए, और भी तालियाँ बजीं।

एक दिन रात के ग्यारह बजे थे। यूक्रेन होटल की तीसरी मंजिल पर राज ठहरे थे, उनका सिगरेट का स्टाक ख़त्म हो गया था। उस विशाल होटल के मुख्य भोजन हाल के अलावा प्रत्येक मंजिल पर एक छोटा-सा रेस्टोराँ होता है जहाँ चाय, काफ़ी, कुछ अन्य छुट-पुट खाने की चीजें और सिगरेट मिल जाती है। राज खड़े थे कि क्या करें। रेस्टोराँ की कर्मचारिणियों को पता लगा। रेस्टोराँ वैसे ही बन्द हुआ था, और एक कर्मचारिणी ने बनावटी गुस्से से राज से कहा : "हम लोगों ने कितनी बार तुमको अपने रेस्टोराँ में आने को कहा है, तुम नहीं आये, हम सिगरेट नहीं देंगे।" प्यार-भरी वह झिड़की थी, और चतुर राज ने बच्चों की तरह बन कर कहा, चलो अभी चलें। अरे साहब; उन रूसी महिलाओं को तो जैसे मुँह माँगी मुराद मिल गयी, कितनी खुशी-खुशी, कितने प्यार से वे राज को साथ ले गयीं। राज से बातें करना ही उनके लिए अनुपम अनुभव था।

हम यूक्रेन की राजधानी कीव के पास एक कोलखोज में गये।

कोलखोज के अध्यक्ष विनास्कीं माइखेल इस्कोविच के यहाँ भोजन था। इस्कोविच की श्रीमती जी शाकाहारी जैसी चिड़िया को भोजन देने के काम में बेहद व्यस्त थीं। पर 'आवारा' उन्होंने भी देखा था, और राज कपूर की बात चली तो हमने कहा कि मास्को में हम साथ ही यूक्रेन होटल में थे। यह कि मैं राज कपूर को व्यक्तिगत रूप से जानता हूँ, उनके लिए बड़े कौतूहल की बात हो गई। और जाने के पहले विनास्कीं माइखेल और श्रीमती इस्कोविच ने हमसे वादा लिया कि हम राज कपूर तक उनका प्रबल अनुरोध पहुँचा देंगे कि अगली बार रूस आने पर वे उनके कोलखोज जरूर जाएँगे।

राज कपूर रूस देश में एक कोने से दूसरे कोने तक लोकप्रिय हैं। हमने इस का कारण समझने का प्रयास किया। 'आवारा' बहुत देखा गया, बहुत पसन्द आया। 'आवारा' बालक के जीवन में, उसके उस प्रारम्भिक गायन 'दुनिया में मेरा कोई नहीं······आस्मान का तारा हूँ' में उन्होंने दुःखी अनाथ बालक की व्यथा देखी। इसी खेल और इसी गाने ने चीन देश में भी यही प्रभाव डाला। हमने हैंग्चो में देखा था, एक चीनी युवक इन्हीं लाइनों को उसी तर्ज में चीनी भाषा में गाते हुए स्टेज पर रो रहा था। तो इस गाने ने पकड़ा, इस खेल ने रूसियों को पकड़ा, और राज उस कल्पना के भारतीय चिन्ह हो गये। फिर राज का अपना भी व्यक्तित्व है। उसमें एक महान् कला साधक पिता की आत्मा भी सम्मिलित है। और फिर राज श्रेष्ठ भारतीय हैं। भारतीय परम्परा और भारतीय युगों का उनमें सुन्दर समन्वय है। और जब इण्डुस्की रूस्कियों को इतना प्यारा लगा तो उस प्यार के केन्द्र-बिन्दु भी बने। उनमें एक हमारे प्रधान मन्त्री हैं। दूसरे हमारे राज कपूर हैं। अभी भारत को उनसे बड़ी आशाएँ हैं। और रूस वाले भी उनसे कोई कम आशा नहीं रखते। निश्चय ही राज कपूर सब की आशा फलवती करेंगे।

लेनिनग्राड

लेनिनग्राड ढाई सौ वर्ष पुराना हो गया है। कुछ ही दिन पूर्व उसकी ढाई सौवीं वर्षगांठ धूम-धाम से मनाई गई। यह ऐतिहासिक शहर है, और महत्त्व में मास्को के बाद दूसरे नम्बर का। रूस के जार पीटर महान् के नाम से वह पीटर्सबर्ग या पेट्रोग्राड कहा जाता है, पर क्रान्ति के बाद अपने महान् नेता लेनिन के प्रति आदर व्यक्त करने की दृष्टि से उसका नाम लेनिनग्राड कर दिया गया। विराट् यह नगर है, बाल्टिक समुद्र पर, फ़िनलैंड की खाड़ी पर बसा हुआ। यह और मुरमांस्क, यही दो समुद्री बन्दरगाह विशाल रूस के उत्तर में हैं, और यहाँ साल में चार-पाँच महीने बर्फ़ जमी रहती है, बन्दरगाह बेकार-सा हो जाता है। रूसी सरहद लेनिनग्राड से पन्द्रह-बीस मील ही और आगे है, फिर फिनलैंड शुरू हो जाता है।

क्रान्ति के पूर्व लेनिनग्राड जारशाही का और रूस के शोषक बड़े-बड़े भूपतियों, ड्यूकों और प्रिन्सों की रंगीली अठखेलियों का नगर था। लेनिनग्राड यूरोप के बहुत सुन्दर शहरों में गिना जाता है। सड़कें बड़ी साफ-सुथरी हैं, और बड़ी ही भव्य वहाँ की इमारतें हैं। पता लगा कि इमारतों के इतना भव्य और सुन्दर होने का कारण यह है कि जब एक ड्यूक ने ठाठदार भव्य महल बनवाया तो लाग-डाँट में दूसरे ने उससे भी भव्य भवन निर्माण किया, और जब यह सिलसिला चला तो एक के बाद दूसरी एक से एक भव्य इमारतें लेनिनग्राड की सड़कों पर खड़ी हो गईं। वह निरंकुश, हृदयहीन शोषण का जमाना था, और उन इमारतों में वस्तुतः रूसी कृषकों का रक्त था। लेनिनग्राड की कुछ सड़कों पर इन भव्य भवनों का

आलीशान सिलसिला आश्चर्यचकित कर देने वाला है।

मास्को से लेनिनग्राड को जो रेल बनी, उसकी भी विचित्र दास्तान है। तत्कालीन ज़ार के पास उसके अधिकारी इस रेल को बनाने का प्रस्ताव लेकर गए। ज़ार ने एक पेंसिल उठा नक्शे पर मास्को और लेनिनग्राड के बीच एक सीधी लाइन खींच दी कि बस ऐसे ही रेलवे लाइन बनाई जाए। इंजीनियरों की चलती तो मार्ग कुछ मुड़-चुड़ कर बनाया जाता ताकि बीहड़ पथों और पर्वतों को काटने की दिक्कतें कम होतीं। पर ज़ार का हुक्म था, वैसी ही सीधी रेल बनी, बड़ा खर्च हुआ, बड़ी दिक्कतें हुईं, पर हुक्म तामील हुआ।

मास्को आज रूस का हृदय है, विशाल महान् शहर है, पर लेनिनग्राड को वस्तुतः महान् रूसी क्रान्ति का क्रीड़ांगण कहा जायगा। बड़ी तेज़ धारा वाली, पर कम चौड़ी नीवा नदी शहर को दो भागों में विभक्त करती है। और नीवा के एक तट पर ज़ारों का कल्पनातीत विराट् शीत महल (विण्टर पैलेस) है, तो उसके लगभग सामने, नीवा के दूसरे तट पर पीटर-पाल किला है, जहाँ अगणित रूसी क्रान्तिकारी बन्दी हुए, तरह-तरह की उनको यातनाएँ दी गईं, और सैकड़ों को वहाँ मौत के घाट उतारा गया।

सन् १९१७ की फरवरी क्रान्ति की लपटें पहली बार इसी शहर में उठीं थीं। उसी दिन वहाँ के क्रान्तिकारी मज़दूरों ने विण्टर पैलेस पर कब्ज़ा कर ज़ार को गिरफ्तार किया और वहीं नवम्बर मास में लेनिन के नेतृत्व में रूस की बोलशेविक पार्टी ने संसार के प्रथम मज़दूर-किसान सोवियत राज्य की स्थापना की।

इस महान् क्रान्ति का केन्द्र स्मोलनी नामक एक भवन था। एक विशाल चौक के एक भाग में बनी इस इमारत के बाहर एक स्मारक-पत्र लगा है जिस पर लिखा है: "१९१७ की महान्

समाजवादी क्रान्ति में इसी स्मोलनी में मज़दूरों, सैनिकों और नाविकों के सशस्त्र विद्रोह का केन्द्रीय कार्यालय था। इसी इमारत से व्लाडीमीर इलिच लेनिन ने सशस्त्र क्रान्तिका संचालन किया।"

तब से चालीस वर्ष बीत चुके हैं, और अभी भी असंख्य नर-नारियों का तांता रोज़ ही स्मोलनी जाता है—खास तौर से उस कमरे को देखने के लिए जहाँ लेनिन उन क्रान्ति के दिनों में रहते थे। यहीं वह हाल भी है जहाँ नयी सोवियत सरकार की स्थापना की घोषणा हुई, जहाँ शान्ति, भूमि पुनर्वितरण इत्यादि पर लेनिन द्वारा निर्मित आज्ञाओं की घोषणा हुई।

एक लम्बे गलियारे को पार कर हम उस कमरे में पहुँचे जहाँ महान् लेनिन का निवास था। लेनिन के कमरे से लगा एक छोटा-सा कमरा और था जहाँ लेनिन की रक्षा के लिए एक गार्ड सदा खड़ा रहता था। कमरे में हमको कमरे को गर्म करने के लिए बना ईंधन जलाने का एक स्थल दिखा। पता लगा कि यह पहले नहीं था, लेनिन ने ही उसे बनवाया ताकि उनका गार्ड सर्दी में ठिठुरता न खड़ा रहे। आज इसी कमरे में उस क्रान्ति के अनेक चित्र लगे हैं।

जिस कमरे में लेनिन रहते थे, वह उसी हालत में रखा गया है। सादगी की हद है। हमको सेवाग्राम में बापू की कुटी की याद आ गई। कमरा काफ़ी छोटा था, और बीच में एक लकड़ी का पार्टीशन था। पार्टीशन की उस ओर दो पतली खाटें दीवार की दो तरफ लगी थीं, उन्हीं पर लेनिन और क्रुप्सकाया विश्राम करते थे। चाय का पानी गरम करने की एक केटली थी। पार्टीशन की दूसरी ओर एक छोटी-सी मेज़ और एक छोटी कुर्सी थी, उसी पर लेनिन बैठ कर काम करते थे।

सादगी की हद थी, और हम वहाँ खड़े-खड़े रूसी स्त्री-पुरुषों

और बच्चों को देख रहे थे। उनके हृदय में कैसी भावनाएँ उद्वेलित थीं, यह उनके चेहरों पर झलकती थीं। वे गम्भीर थे, चुप थे, सब कुछ जैसे आँख फाड़-फाड़ कर देख रहे थे। मानो हृदय में स्थायी अक्स उतार लेना चाहते हों। हमने देखा कि दो माताएँ अपने बच्चों को यही दिखाने लाई थीं कि वह महापुरुष कितनी सादगी से रहता था। हमने तीन चीनी युवकों को देखा ! वह लेनिन की संगमरमर की बस्ट को देखते रहे, लगा उनकी आँखें वहीं चपक गई हैं, वहाँ से हट ही नहीं पातीं।

लेनिनग्राड में ही हमने ऐतिहासिक जहाज 'आरोरा' देखा। रूसी क्रान्ति को हिंसामय कहा जाता है, पर वस्तुतः सात नवम्बर की क्रान्ति में केवल ६ व्यक्ति मरे थे। उस दिन इसी जहाज की तोप से निकले एक मात्र गोले ने, बिना किसी को घायल किए, नीवा के जल में गिर कर क्रान्ति को सफल बना दिया था। लेनिन की अध्यक्षता में काम करने वाली फौजी क्रान्तिकारी कमेटी ने उस दिन आज्ञा भेजी : "अस्थाई सरकार (जिसका अध्यक्ष केरेन्स्की था) को ९ बजे रात इस्तीफ़ा देना है। यदि वह इस्तीफ़ा नहीं देती तो पीटरपाल किले पर एक रोशनी चमकेगी। और अब 'आरोरा' को एक खाली गोला छोड़ना होगा जिससे सबको पता हो जाय कि शीत महल (विण्टर पैलेस) पर आक्रमण करने का मौका आ गया है।"

बड़े इन्तज़ार के बाद रात ९.४५ पर पीटरपाल किले पर एक लाल रोशनी चमकी। दूसरे क्षण रोशनी चमकी और धड़ाके की आवाज़ से गोला नीवा की ओर चला। तुरन्त ही आरोरा वालों ने हुर्रा की आवाज़ सुनी और मशीनगन व बन्दूक दगने की आवाज़ें आने लगीं। और तब 'आरोरा' संकेत-सूचक ने बताया कि संदेश आया है : "आरोरा ! गोले मत छोड़ो। हमने विण्टर पैलेस पर कब्ज़ा

कर लिया था।"

इस प्रकार नवम्बर क्रान्ति हुई। 'आरोरा' ढका हुआ, बड़ा सम्भल कर लेनिनग्राड की एक सड़क के बगल के समुद्र में खड़ाथा। उस समय की 'आरोरा' की पार्टी कमेटी का एक सदस्य अभी भी वहाँ काम करता है, और बड़े उत्साह से उसने सब वाकयात बताए। वह अपनी पूरी वर्दी में था, और उसके कोट पर 'समाजवादी श्रम-वीर' का पदक था—जो सोवियत संघ में बड़ा ऊँचा सम्मान है। किसी ने हिन्दुस्तान का नाम लिया तो उन्होंने कहा वे कराची, बम्बई और मद्रास हो आए हैं। रंगून वे गए हैं, सिंगापुर और हांग-कांग और शंघाई, गर्ज कि संसार के सब ही बन्दरगाह लगभग उनके छाने हुए हैं।

लेनिनग्राड विशाल नगर है, जगह-जगह एक विकसित स्थापत्य-कला के श्रेष्ठ उदाहरण मिलते हैं। बड़े सुन्दर वहाँ प्राचीन गिरजा-घर हैं। हम पैदल लेनिनग्राड बहुत घूमे। पूरे ६०० दिनों तक वह शहर जर्मनों से चारों ओर से घिरा हुआ था। बमबारी काफी हुई। पर उसके चिन्ह अब नहीं दीखते। हाँ कुछ मकान दिखे, जो शायद याददाश्त के लिए ही वैसे रहने दिए गए थे, जो गोलियों के निशानों से बिंधे थे, जो युद्ध की भयंकरता और निर्ममता को व्यक्त करते थे। चौड़ी सड़कें हैं, फिर पुराने लेनिनग्राड की गलियाँ भी हैं। एक नहर शहर के बीच से निकलती है जिसके दोनों ओर पुरानी बस्तियाँ हैं, कुछ-कुछ अपने मुहल्लों-टोलों से मिलती हुईं। यहाँ घूमने पर दोस्तो-वस्की, टाल्सटाय, तुर्गनेव, गोर्की, कुप्रिन इत्यादि के उपन्यासों में वर्णित रूसी घरों और सड़कों की याद आ गई।

लेनिनग्राड सुन्दर है, विराट् है, विशाल औद्योगिक केन्द्र है, रूसियों को उस पर गर्व है, यह सब सही है, पर सबसे ऊपर लेनिन-

ग्राड अपनी क्रान्तिकारी परम्पराओं के लिए, अपने शौर्य के लिए प्रसिद्ध है। महान् नवम्बर क्रान्ति तो वहाँ हुई ही, द्वितीय विश्व महायुद्ध में ९०० दिनों तक जर्मनों द्वारा चारों ओर से घिरे होने के बावजूद अजेय लेनिनग्राड के नागरिकों ने संसार की वीर-गाथा में एक नया, अनुपम अध्याय जोड़ दिया। लेनिनग्राड के उन दिनों का हाल सुनाने वालों ने रोमांचकारी बातें बताईं। भोजन कम पड़ गया, लोगों के भूखों मरने की नौबत आ गई। कड़ाके की सर्दी जब आई तो भूखे लोगों में इतनी शक्ति न थी कि मृत को बाहर ले जाकर दफना सके। सर्दी से बचने के लिए लेनिनग्राड के घरों में शीशेदार डबल दरवाजे लगाए जाते हैं। मृत व्यक्ति इन्हीं दो खिड़की के दरवाज़ों के बीच डाल दिए जाते थे। बर्फ़ के कारण शरीर की दुर्गन्ध से बचत रहती थी।

एक तरफ यह दशा थी, पर दूसरी तरफ लेनिनग्राड के शस्त्र बनाने वाले बड़े-बड़े कारखाने बराबर काम करते रहे, मोर्चे पर डटे लोगों को बराबर शस्त्र पहुँचाया जाता रहा, और हिटलर की पूरी ताकत उस लोहे के घेरे को न भेद सकी। ९०० दिनों बाद जब जर्मनों का घेरा टूटा और लेनिनग्राड के नागरिक फिर बाहरी दुनिया से सम्पर्क स्थापित कर सके तो उस दिन थके लेनिनग्राड निवासियों ने कितनी खुशियाँ मनाईं। लेनिनग्राड के शौर्य को सम्मानित करने के लिए सोवियत सरकार ने उस नगर को 'आर्डर आफ़ लेनिन' प्रदान किया। यही रूस का सबसे ऊँचा सम्मान है।

जर्मन आक्रमणकारी कितना नृशंस और हृदयहीन था, इसका एक उदाहरण हमको लेनिनग्राड के निकट पीटरहाफ़ नामक एक स्थान में देखने को मिला। लेनिनग्राड से लगभग बीस मील की दूरी पर जार पीटर महान् ने गर्मी बिताने के लिए पहाड़ियों और जंगल

के बीच सागर के तट पर एक महल और उद्यान बड़े भारी घेरे में बनवाया था। यहाँ १२६ फव्वारे हैं। समुद्र के किनारे-किनारे टहलने के लिए पथ बने हैं, फुलवाड़ी है। मुख्य महल फ्रांसीसी बोर्बो सम्राटों के वर्साई महल के अनुरूप बनाया गया। वास्तव में पीटरहाफ़ निराला स्थान है, अद्वितीय है।

जर्मनों ने पीटरहाफ़ को ही लेनिनग्राड का घेरा डालने वाली जर्मन फ़ौज का केन्द्रीय कमांड दफ्तर बनाया और जब वे वहाँ से भागे तो सब कुछ ध्वंस करते गए। वह भव्य वर्साई जैसा महल डाइनामाइट से उड़ा दिया गया। पीटरहाफ़ के फव्वारों की सुनहली मूर्तियों को भी जर्मनों ने तोड़ा-फोड़ा और कुछ अपने साथ लाद ले गये। कुछ मूर्तियाँ रास्ते में कहीं गाड़ दी गईं, जहाँ वे बाद में मिलीं। इतने कलामय सुन्दर स्थल का ऐसा बर्बर विनाश करने वाले लोग कैसे होंगे—हम यही सोचते रहे।

इस समय तक फिर से पीटरहाफ का विशाल उद्यान, वाटिका और फव्वारे पूर्णतया पुराने रूप में ला दिए गए हैं। वर्साई जैसे महल का बाह्य रूप बिलकुल पुराने ढंग पर बन गया है, दूर से भव्य लगता है। पर खिड़कियों से हमने जब अन्दर देखा तो वही विध्वस्त रूप दिखा। बताया गया कि अन्दरूनी भाग का निर्माण भी शीघ्र हो जायगा।

लेनिनग्राड ही सम्भवत: सबसे उत्तर में बसा संसार का विशाल नगर है। साल के पाँच छः महीने वहाँ बर्फ रहती है। मौसम बड़ा अनिश्चित रहता है, दिन में एक दर्जन बार तेज़ धूप निकल सकती है, और फिर इतनी ही बार अरातोड़ वर्षा भी हो सकती है। वह आर्कटिक क्षेत्र के निकट है, जहाँ साल में छः महीने रात और छः महीने दिन रहता है। लेनिनग्राड में भी साल में कुछ दिन होते हैं

जब चौबीस घण्टे में एक क्षण के लिए सड़कों की बत्ती नहीं जलती, और फिर कुछ ऐसे दिन होते हैं जब चौबीस घण्टे बत्तियाँ जलती रहती हैं। हमने दस बजे रात को सूर्यास्त और दो बजे प्रातः सूर्योदय देखा।

लेनिनग्राड से हम चले तो चाँदनी रात थी। रूसी भूमि तेज़ी से गुजरने लगी। हरे-हरे वृक्ष थे, हरी भूमि थी, कहीं सघन वृक्ष, कहीं सपाट भूमि, लगा कि जैसे हम अपने उत्तर भारत के मैदान में दौड़ते जाते हों। दूर उत्तर में ध्रुव तारा दिखाई पड़ रहा था, कुछ अधिक चमकदार लगा। मन में कुछ विचित्र-सा लगा कि भला इतने उत्तर में इतनी बर्फीली दुनिया में इतनी हरियाली कैसी। इसी हरी-भरी भूमि पर कुछ ही वर्षों पूर्व जर्मन आक्रमणकारियों ने नरमेध किया था, उस धरित्री को उजाड़ा था। पर हरियाली फिर भी थी, वायुमण्डल शान्त था, जनता ने आततायी को पराजित कर अपनी हरी-भरी भूमि को पुनः पा लिया था।

हरमिटाज संग्रहालय

वैसे तो लेनिनग्राड में अगणित दर्शनीय स्थल हैं, पर दो स्थान अपनी विशेषता रखते हैं। एक तो है लेनिन म्यूज़ियम और दूसरा हरमिटाज संग्रहालय।

लेनिन का व्यक्तित्व सारे सोवियत देश पर छाया हुआ है। हर जगह लेनिन की मूर्ति दीखती है, हर जगह लेनिन का चित्र है। कोलखोजों में प्रायः 'लेनिन कोना' हुआ करता है, जहाँ कोलखोज सदस्य बैठते हैं। लेनिन की स्मृति में बनी इमारतें, लेनिन स्मृति प्रदर्शनियाँ, सबही जगह मिलती हैं। इलिच सच में आज भी रूसकी मानव के बड़े प्यारे हैं। लेनिन की आत्मा आज भी सम्पूर्ण सोवियत राष्ट्र को प्रेरणा देती रहती है।

तो लेनिन की स्मृति में बने सभी स्थानों में सर्वोच्च स्थान लेनिन म्यूज़ियम को है। बाहर वह ऐतिहासिक रणगाड़ी खड़ी है जिस पर खड़े होकर लेनिन ने क्रान्ति का आह्वान किया था। अन्दर लेनिन के सम्पूर्ण जीवन का चित्रों में वर्णन है। लेनिन के जीवन से जुड़ी उनके सम्पर्क में आई अनेकानेक वस्तुएँ हैं। वहाँ दर्शकों का सदा ताँता लगा रहता है।

और लेनिनग्राड का हरमिटाज संग्रहालय संसार में अपने ढंग का सबसे अद्भुत और निराला माना जाता है। वहाँ प्रदर्शित वस्तुओं की संख्या बीस लाख है। विश्व संस्कृति और कला के ऐतिहासिक क्रमबद्ध इतिहास को दर्शाता हुआ यह विराट् संग्रहालय अद्वितीय है। वहाँ अनेक देशों की कला और ऐतिहासिक स्मृति की अमूल्य वस्तुएँ इस क्रम से संग्रहीत हैं कि उनसे उस देश के हज़ारों

वर्ष के सांस्कृतिक विकास के इतिहास का पता लगता है।

ज़ारों का शीत महल सन् १७५४-१७६२ के बीच बनाया गया था। इसी महल के साथ-साथ एक विशेष भवन कला संग्रहालय के रूप में बनाया गया, पर तब, और १९वीं शताब्दी के लगभग अन्त तक केवल ज़ार के दरबार के कुछ चुनिन्दा लोग ही उसे देख सकते थे। १८वीं शताब्दी के अन्त में शीत महल के बगल में दो और विशाल भवन बनवाए गए जहाँ नया संग्रहालय स्थापित किया गया। १८३७ में एक अग्निकांड में शीतमहल ध्वंस हो गया, पर शीघ्र ही वह लगभग पुराने ही ढंग पर फिर बना दिया गया।

तो आज यह हरमिटाज संग्रहालय इसी शीत महल में और बगल की दो इमारतों में है। शुरू से ही इस संग्रहालय को "हरमिटाज गैलरी" का नाम दिया गया और वही 'हरमिटाज' शब्द आज भी इस महान् कला संग्रहालय के लिए प्रयुक्त होता है।

१९वीं शताब्दी के अन्त में, कुछ प्रमुख रूसी विद्वानों के ज़ोर देने पर हरमिटाज को देखने पर पाबन्दी कुछ ढीली की गई जिससे अब काफ़ी नागरिक उसे देख सकते थे। पर अन्तिम रूप से बिना भेद भाव के सबके वास्ते हरमिटाज संग्रहालय के दरवाजे महान् रूसी क्रान्ति के बाद ही खुले। सोवियत सरकार ने उसके उचित प्रबन्ध और विकास की ओर विशेष ध्यान दिया। हरमिटाज के पुनर्गठन में मैक्सिम गोर्की ने बड़ी दिलचस्पी ली।

सोवियत सरकार की देख-रेख में हरमिटाज का संग्रह क्रान्ति के पूर्व से लगभग तीन गुना बढ़ गया है। हरमिटाज के तीन विभाग विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। प्रथम, रूसी संस्कृति का इतिहास, द्वितीय, संसार के आदिम मानवों का सांस्कृतिक इतिहास, और तृतीय, पूर्वी देशों की जनता की संस्कृति और कला। और जहाँ ज़ारों के

जमाने में बस मुट्ठीभर धनाढ्य दरबारी ही उस कला संग्रह को देख सकते थे, आज वह जन-जन की वस्तु है। उदाहरणार्थ, १९५४ में १२,५०,००० आदमियों ने हरमिटाज देखा, १२००० भ्रमण-दल वहाँ आए, और २४० अध्ययन टुकड़ियों ने वहाँ रहकर किसी विशिष्ट विषय का विस्तृत अध्ययन किया।

हरमिटाज संग्रहालय में संग्रहीत कला-वस्तुओं का जो महत्त्व है वह तो है ही, पर यदि यह महान् संग्रह न भी होता तो भी वह इमारत ही संसार में प्रसिद्ध होती। उसके अलग-अलग भाग भिन्न कालों में तत्कालीन सर्वश्रेष्ठ भवन-निर्माण विशेषज्ञों की देख-रेख में बनवाए गये। और यह विशेषज्ञ रूसी भी थे, पर कई गैर रूसी थे, उदाहरणार्थ इटालियन और जर्मन। उस काल में इटली की भवन-निर्माण कला विशेष रूप से बढ़ी-चढ़ी मानी जाती थी, इमारतों की, उसके हालों और कमरों की बनावट में जो खूबी है वह तो है ही, साथ ही दीवारों पर और कमरों के गुम्बद पर संसार के महानतम चित्रकारों को बुलवाकर चित्र बनवाए गए।

उदाहरणार्थ, उस कमरे को लीजिए जहां सन् १८१२ में रूस पर नेपोलियन का आक्रमण और उसे पराजित करने के लिए रूस देश का महान् देशभक्तिपूर्ण प्रयास दिखाया गया है। कार्लो रोसी नामक एक इटालियन ने इस हाल का निर्माण किया और उसकी दीवारों पर उन रूसी जनरलों के चित्र हैं जिन्होंने नेपोलियन की पराजय में मुख्य भाग लिया और बाद में सन् १८१४ में पेरिस पर कब्जा किया। फील्ड मार्शल कुतुजोव और उनके दूसरे सुप्रसिद्ध साथी जनरल यथा जनरल बाग्रेशन, जनरल डेवीडोव, जनरल रायेव्स्की, जनरल दोख्तूरोव इत्यादि के चित्र वहाँ हैं, और निश्चय ही इन सजीव चित्रों को देखकर उन वीरों के व्यक्तित्व का अनुमान होता

है जिन्होंने महान् नेपोलियन के दाँत खट्टे किए। सन् १९१७ की महान् रूसी क्रान्ति के बाद यह महसूस किया गया कि इस हाल में जहाँ जनरलों के चित्र हैं, और उस युद्ध के अनेकानेक चित्र दिखाए गए हैं, वहाँ उस युद्ध में लड़ने वाले सैनिकों का कोई चित्र नहीं है। अतः उस हाल में कुछ ऐसे चित्र बनाए गए जो उस युद्ध के सामान्य सैनिकों को भी दर्शाते हैं।

हरमिटाज में सब ही प्रकार की कला वस्तुएँ हैं—सुन्दर मूर्तियाँ और स्थापत्य-कला के उदाहरण, हाथी दाँत के काम, चाँदी और सोने के सामान, अद्भुत फरनीचर, शीशे पर काम, पच्चीकारी के नमूने वगैरह वगैरह। वस्तुतः यह संग्रह इतना विशाल है कि उसे पूरी तौर से देखने-समझने में एक दो दिन नहीं कई महीने लगाना आवश्यक है।

पूर्वी विभाग में हमको भारत और चीन की कला का अनुपम संग्रह दिखाई पड़ा। भारत की कला-वस्तुएँ मुख्यतः सत्रहवीं से बीसवीं शताब्दी के बीच के काल की हैं। विशेष रूप से उनमें भारतीय चित्रों का सुन्दर संग्रह है। चीन का संग्रह और लम्बे काल का है और एक चीनी ने बताया कि अनेक अलभ्य वस्तुएँ वहाँ हैं। फिर प्रचीन मिश्र और बाइजेण्टियम साम्राज्य की वस्तुएँ भी वहाँ हैं।

और हरमिटाज में सोवियत संघ की विभिन्न राष्ट्रीय अल्प-जातियों की कला को दिखलाने की ओर विशेष ध्यान दिया गया है। रूस में राष्ट्रीय अल्प-जातियों के प्रति समान व्यवहार का यह भी एक उदाहरण है, जैसा हमने ऊपर कहा है। महान् नवम्बर क्रान्ति के बाद संग्रहालय तीन गुना बढ़ गया। इसका एक कारण तो निश्चय ही इस दिशा में सोवियत सरकार द्वारा दिया जाने वाला ध्यान है।

पर एक बात और है। क्रान्ति के बाद बड़े-बड़े ड्यूक और प्रिन्स और जनता के रक्त-शोषक अपने-अपने विशाल महलों को छोड़कर भाग निकले। इन भव्य महलों में इन शोषकों ने जनता के शोषण से एकत्रित धन द्वारा संसार की श्रेष्ठ कला वस्तुओं का संग्रह किया था। वह सब का सब क्रान्तिकारी सरकार द्वारा जब्त कर लिया गया, और बाद में उन्हें इसी विशाल राष्ट्रीय संग्रहालय में केन्द्रित कर दिया गया।

हरमिटाज के एक विशेष भाग में भी हम लोगों को ले जाया गया। यहाँ जवाहरातों का संग्रह है। सशस्त्र संतरियों का बराबर वहाँ पहरा रहता है और मजबूत लोहे के दरवाज़ों में वह अपार धन-राशि बन्द है। हीरा, नीलम, पन्ना, लाल, पोखराज सभी प्रकार के जवाहरातों की वस्तुएँ वहाँ थीं। ड्यूकों और प्रिन्सों की हमने छड़ियाँ देखीं, मूठ देखा, जो पूरी की पूरी नीलम की या पन्ने की थीं। वह धन अथाह था, और हमारी आँखें चकाचौंध थीं।

वस्तुतः हरमिटाज का वर्णन कुछ पृष्ठों में देने का प्रयास हास्यास्पद ही है। अव्वल तो उसे ठीक से समझने के लिए कला का उच्च-कोटि का ज्ञान चाहिए, और फिर उसका वर्णन तो और भी कठिन कार्य है। चन्द घण्टों में दौड़ते-दौड़ते उस संग्रहालय को देखने के हमारे प्रयास को एक रस्म अदायगी के ही समान कहना होगा। पर यह निश्चित है कि लेनिनग्राड के किसी भी वर्णन में इस हरमिटाज संग्रहालय की चर्चा आवश्यक है।

हमने उस विशाल संग्रहालय को हजारों रूसी नागरिकों से भरा हुआ पाया। युवा और वृद्ध, युवतियाँ और माताएँ और बच्चे सब वहाँ थे, घूम रहे थे। हर जगह गाइड थे जो दर्शकों को समझाते थे। उन रूसी मानवों के चेहरों पर आत्मसंतोष और गर्व की भावना

थी—सही ही उन्हें सन्तुष्ट होने का, अपने को गौरवान्वित महसू
करने का अधिकार है। उस संग्रहालय की अतुलित सम्पदा किसी ए
व्यक्ति की नहीं है। वह दिन लद गए जब ज़ारशाही दरबार के चन्द
चुनिन्दा लोग ही इन कला वस्तुओं को देख सकते थे। वह सम्पद
अब सोवियत जनता की सम्पदा है, और रूस का उन्मुक्त मानव य
खूब जानता है, इस पर गर्व करता है।

रूसी नौजवान

रूसी जनता ही चित्ताकर्षक है, पर उसमें भी सबसे आकर्षक उसके नौजवान हैं। अव्वल तो वे देखने में अच्छे लगते हैं, चेहरे-मोहरे से दुरुस्त और खूब बढ़िया स्वस्थ। दुबले-पतले, धंसी आँखों और चुचके गालों वाले, जीवन के संघर्ष से परेशान और बेरोज़गारी के शिकार, उत्साहविहीन, चिन्तित नौजवान तो वहाँ दिखाई ही नहीं पड़ते। वहाँ बेरोज़गारी नहीं है, वहाँ जीवकोपार्जन के लिए संघर्ष नहीं है। सोवियत संविधान के अन्तर्गत रूसी युवक को शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार है, उसको डाक्टरी सुविधा उपलब्ध है, और उसके लिए रोजगार धंधा सुनिश्चित है। सबके माता-पिता और परिवार वाले हिल्ले से लगे हैं, रोज़ी कमाते हैं, खाते हैं, सुख से रहते हैं, और सिनेमा थियेटर, आपरा तथा अन्य सांस्कृतिक कार्य-क्रमों में दिलचस्पी रखते हैं, उन्हें देखते हैं।

जवानी तो इठलाती-मदमाती होती ही है, फिर जब वह चिन्ता-मुक्त है तो निश्चय ही उसका उभार भी निराला होता है। और जब जवानी की यह चिन्ताविमुक्तता चन्द धनवान और समृद्ध लोगों के लाड़लों तक सीमित न रहकर बीस करोड़ नागरिकों के सम्पूर्ण राष्ट्र में व्यापक हो गई हो तो निश्चय वह जवानी, और उस जवानी का उभार निराला होगा।

संसार भर के ३४,००० नौजवान युवक समारोह में मास्को पहुँचे, और उनके आतिथ्य-सत्कार की देखभाल रूसी युवक-युवतियों द्वारा ही की गई। संसार के अन्य नवयुवकों का रूसी युवकों से यह सम्पर्क कितना मधुर रहा, कितनी उसकी मधुर स्मृतियाँ लेकर वहाँ

से विश्व युवक लौटा, कितने हजारों-हजार पते भावी पत्र-व्यवहार और सम्पर्क के लिए नोट किए गए, इसका कोई भी लेखा-जोखा नहीं है।

अपने समूह में रूसी युवक सौन्दर्य, दृढ़ता एवं आत्मसम्मान की छटा छटकाते प्रतीत होते हैं। देखते लगता है कि सबों में पारस्परिक बड़ा स्नेहभाव है, बड़ी समझदारी है। और व्यक्तिगत सम्पर्क में रूसी युवक भोला, निष्कपट, बड़ी खुली तबियत का लगता है। खुला उसका चेहरा है, मैत्रीपूर्ण उसकी आँखें हैं और सच में उसे अपने सोवियत देश पर बड़ा गर्व है, और अपनी सोवियत भूमि से वह बहुत-बहुत प्यार करता है।

संसार में रूस की बुराई करने वाले कहते हैं कि वहाँ बड़ा दमन है, बड़ी पीड़ा है, लोग बड़े पिसे हैं, वहाँ गुलामी है—इत्यादि इत्यादि। यह प्रलाप कितना अनर्गल है और ऐसी बातें बकने वाले वास्तविकता से कितने बहके हैं, इसका पता रूसी युवक के उन्मुक्त और उल्लासमय व्यक्तित्व से लगता है। रूसी युवकों को बात-चीत करते देख यही लगा कि वे विनोदप्रिय हैं। उनके ठहाके, उनकी खुली हँसी इसी के परिचायक है।

इस उल्लास और विनोदप्रियता के साथ-साथ रूसी नौजवान में एक गम्भीरता भी दिखाई पड़ती है। हमारा जामायेव नामक एक रूसी नवयुवक से सम्पर्क रहा। लगभग अट्ठारह वर्ष की जामायेव की अवस्था है, लम्ब-तड़ंग शरीर और सुन्दर व्यक्तित्व। जामायेव के पूरे व्यक्तित्व से ताजगी और फुर्ती मानो फूटी पड़ती है। शील सौजन्य एवं विनम्रता का प्रचुर पुट भी है। उनमें एक अट्ठारह वर्षीय युवक का अल्हड़पन भी है, पर साथ ही एक बुद्धिजीवी की गम्भीरता भी स्पष्ट झलकती है। अंग्रेजी भाषा का उसका ज्ञान

उच्चकोटि का है, और यदि कोई बताए न तो उसको सुनने वाला उसे अंग्रेज ही समझ सकता है । उसे सब बातों की कितनी जानकारी है। भारत के स्वातन्त्र्य-संग्राम का इतिहास, भारतीय पंचवर्षीय योजना, भारत की आर्थिक समस्याएँ, भारत-पाकिस्तान गुत्थियाँ, इत्यादि इत्यादि विषयों पर जो अनेकानेक प्रश्न उन्होंने किए, और बातों के दौरान उन्होंने जो कभी भी कुछ टिप्पणी की उससे उनके ज्ञान का पता चला ।

ज़ामायेव रूस की यंग कम्यूनिस्ट लीग के सदस्य हैं। उसी नवयुवक संगठन के सदस्य के रूप में ही, अपने संगठन की पुकार पर वे युवक-समारोह के स्वागत-कार्य में भाग ले रहे थे। समारोह प्रारम्भ होने के लगभग दस दिन बाद वे एक दिन जब मिले तो बड़े पस्त और थके से लगे। कारण यही था कि प्रबन्ध-कार्य में वे रात बड़ी देर से सो पाते थे और सुबह होते ही फिर दिन के काम में जुट जाना पड़ता था। थकावट ज़ामायेव के चेहरे पर अंकित थी, पर फिर भी वह बिलकुल शान्त थे और अपने सामान्य आत्म-विश्वास को झलका रहे थे।

और ज़ामायेव को अपनी माँ से बहुत मुहब्बत है। एक दिन जब उनका साथ था तो रात काफी हो गई थी। उन्होंने शर्माते हुए पूछा कि क्या वे जा सकते हैं, "मेरी माँ मेरे इन्तजार में बैठी होंगी।" जिस प्रकार ज़ामायेव ने यह बात कही उससे स्पष्ट हुआ कि मां के लिए उनके हृदय में कितना स्थान है। उन्होंने बताया कि जब तक वे घर नहीं पहुँच जाते, माँ इन्तजार करती बैठी रहती हैं। ऐसी वात्सल्यमयी मां पाने के लिए जब हमने ज़ामायेव को बधाई दी तो वे जैसे कुछ शर्मा से गये, और उसी शर्माहट में कुछ ऐसे शब्द कहे कि "मेरी माँ बड़ी अच्छी है। मैं अपनी माँ से बड़ा स्नेह करता हूँ।"

एक और रूसी नौजवान की याद आती है, नाम है वालाद्येव। अवस्था यही लगभग अट्ठारह-उन्नीस वर्ष की है। कहीं कोई संगीत समारोह था, वालाद्येव जाना चाहते थे पर टिकटों की दिक्कत थी। हमारे नाम से वे टिकट माँगने गए और कुछ दो अर्थी बात बोलकर टिकट झटक लाए। बड़े खुश-खुश लौटे, कहा दो अर्थी बात की मैंने, पर साथ ही यह भी कह दिया : "वे जरूर समझ गए होंगे कि मैं कुछ बात बना रहा हूँ, मेरा चेहरा उन बातों को बोलते इतना लाल हो गया था" और वे खूब हँसे। वालाद्येव की सरलता और भोलेपन पर हम आश्चर्यचकित हो गए।

रूस में कुछ अपने देश के, कुछ कतिपय अन्य देशों के लोग मिले जिन्होंने कहा कि यह सब भाषान्तरकार और प्रबन्धकर्त्ता रूसी नवयुवक समूह खूब 'सिखाया पढ़ाया' हुआ है, वगैरह। उनका खयाल कुछ ऐसा लगा मानो हम एक रहस्यमय देश में हों, और जो भी हमसे मिलता है वह किसी एक सर्वांगीण योजना के अन्तर्गत हमारे सम्पर्क में आता है, और सब 'पढ़ाया-लिखाया' होता है। सन्देह और रहस्य की यह मनोवृत्ति हमको बड़ी सारहीन प्रतीत हुई। उपर्युक्त महानुभावों की बातें सुनकर हमने विशेष ध्यान देकर और सतर्क रह कर यह जानने का प्रयास किया कि वास्तव में इस 'सिखाए-पढ़ाए' वाली बात में कोई तुक है। और हमको कहीं भी ऐसी कुछ बात न दिखी जिससे हमारे अन्दर सन्देह और रहस्य वाली बात की दिल जमई हो। इसके विपरीत, हमको तो खुलापन और सरलता प्रचुर मात्रा में मिली।

वालाद्येव की ही बात लीजिए। उनके चेहरे से भोलापन टपकता है और उनका अंग्रेजी का उच्चारण सटीक अंग्रेजी ढंग का है। वह बहुत हँसमुख भी हैं और कोई भी उनके साथ से खुश होगा।

उनकी सर्वोपरि भावना थी कि सब मेहमानों की ज्यादा से ज्यादा खातिर की जाए। अपनी सिधाई और सादगी के साथ-साथ वालाद्येव की निहित सच्चाई उनको सबका प्रिय बना देती थी। एक जर्मन महिला भी रूस आई थी। हिटलरी आक्रमण के समय रूसी भूमि पर ही उसका लड़का मारा गया था। वालाद्येव की शक्ल से उसको अपने मृत पुत्र की याद आ गई, दोनों के चेहरे बहुत मिलते थे। वह जर्मन महिला वालाद्येव से बात करते समय बहुत रोई। वह चाहती थी कि वालाद्येव उसके साथ जर्मनी चलें, साथ ही रहें। पर यह कहाँ सम्भव था। उसने वालाद्येव की फोटो ली, पता लिया, और पक्का वादा करवाया कि वह उसको बराबर पत्र लिखेंगे और निकट भविष्य में एक बार जर्मनी उसके पास अवश्य जायँगे।

जिन-जिन रूसी नौजवानों के सम्पर्क में हम आए, हमको सबका बौद्धिक स्तर ऊँचा लगा, और उनमें से कुछ तो बड़े ही अध्यवसायी लगे। हम आश्चर्य-चकित रह गए जब किरगिज प्रान्त से आने वाले मास्को विश्वविद्यालय के एक विद्यार्थी ने हमसे भारत की भूमि समस्या पर बातें कीं। वह भूमिहीन कृषि मजदूर की समस्या में खास दिलचस्पी रखता था, और उसने केरल के इजवाहों की, गुजरात के हालियों की, मद्रास प्रान्त के पन्नेयालों की तथा अन्य प्रदेशों के भूमिहीनों की चर्चा की, उनके बारे में और जानकारी चाही। भारत के पंचवर्षीय आयोजन की भी रूसी नौजवानों में जानकारी दिखाई पड़ी, पर एक प्रश्न उन्होंने बराबर किया। उनके मन में कुछ सन्देह थे। उन्होंने कहा कि भारत में समाजवाद का उद्देश्य स्वीकार हो गया है, पर समाजवाद का पहला सिद्धान्त यह है कि शोषण समाप्त हो, पर क्या भारत में मेहनतकशों का

शोषण समाप्त हो गया है ? यह बड़ा सामान्य प्रश्न था। दूसरा प्रश्न जो हमसे बहुत पूछा गया वह यह था कि भारत के उद्योगों में विदेशी पूँजी अभी भी इतनी अधिक क्यों है ? वे जानना चाहते थे कि हमारे देश को बैंकिंग प्रणाली में, और हमारे विदेशी व्यापार में अभी तक ब्रिटिश पूँजी की इतनी प्रधानता क्यों कायम है ?

सवाल सब पते के थे, बहकी छुटपुट किस्म की बाते नहीं हुआ करती थीं, और हमारे उतरों पर और सवाल होते थे। इस सम्बन्ध में हमको ओरनात्स्की इगोर नामक एक नवयुवक नहीं भूलता। यूनीवर्सिटी शिक्षा समाप्त कर इगोर अब कोई अनुसन्धान कार्य कर रहे है। तेज आँखें, समझदार सुन्दर चेहरा, कुछ-कुछ मुस्कराता पर बातों के दौरान में बहुत गम्भीर हो जाने वाला, ऐसी इगोर की आकृति थी। उन्होंने हाल में ही अमरीका के आयात-निर्यात बेंक के कार्यकलापों को पढ़ कर लगभग तीन सौ पन्नों का एक लम्बा अध्ययन-पत्र तैयार किया था जिससे पता लगता है कि द्वितीय महायुद्ध के उपरान्त अमरीकी पूँजी का बहाव किस तरफ रहा है। निश्चय ही यह बड़ा महत्त्वपूर्ण अध्ययन है। और अब इगोर संयुक्त राष्ट्र संघ की खाद्य और कृषि संस्था (फाओ) के गत दस वर्षो के कार्य का अध्ययन कर रहे हैं। इगोर जैसे नवयुवक पर कोई भी देश गर्व कर सकता है। उनसे बातें करने के बाद लगा कि जहाँ ऐसे नौजवान हैं, उस देश का भविष्य निश्चय ही उज्ज्वल है।

कितने ही और सोवियत युवकों से मिलने का और निकट सम्पर्क में आने का हमको सौभाग्य प्राप्त हुआ—कुपिस्की, मिर्स्की, निकोलायेव इत्यादि-इत्यादि और सबसे हम प्रभावित हुए, सबों में हमने समझदारी, मैत्रीभाव और बौद्धिक स्तर प्रचुर मात्रा में पाया।

रूसी नौजवान नवजीवन से स्पंदित है, और खुली तबियत का है, और बड़ी जल्दी उससे कोई गहरी दोस्ती कर सकता है। वस्तुतः रूसी नौजवान समाजवादी मानव है। उसका जन्म और विकास समाजवादी समाज मे हुआ है जहा जीवन को कुंठित करने वाली बाधाएं नही है, जो पूंजीवादी समाज में नौजवानो की कंचन काया को सुखा देती है। और यह रूसी युवक सजग है, सचेत है। वह अपने सोवियत देश को बड़ा स्नेह करता है और यह भी जानता है कि वहां कमियाँ है जिन्हे खत्म करना होगा। स्तालिन काल की पाबन्दियां अब बहुत ढीली हो गई है और सोवियत नवयुवक का विकास अब और स्वच्छन्द और परिपूर्ण प्रकार का हो गया है। और यह रूसी नौजवान हमारा, आपका और संसार की सम्पूर्ण मानवता का प्रगाढ मित्र है और साम्राज्यवादियो का गहरा दुश्मन ऐसा समाजवादी नौजवान अब ससार में है, यह हम सबके लिए और ससार के भविष्य के लिए बड़ी बात है।

मास्को विश्वविद्यालय

रूस जाने के पूर्व वहाँ हो आए एक आदरणीय मित्र ने मास्को विश्वविद्यालय के सम्बन्ध में कहा कि वहाँ इतने कमरे हैं कि यदि एक प्रौढ़ व्यक्ति प्रत्येक दिन एक कमरे में बिताए तो जब तक वह सब कमरों को निपटाएगा, वृद्ध हो जायगा। यह कथन भले कुछ बढ़ा-चढ़ा हो, पर इससे इस महान् विश्वविद्यालय के दैत्याकार का कुछ भान तो हो ही जाता है।

सन् १८१२ में, मास्को पर कब्जा करने के पूर्व नेपोलियन ने पोकलोनी पहाड़ियों पर खड़े होकर पहली बार क्रेमलिन के सुप्रसिद्ध सुनहले गुम्बदों को देखा, और उसकी रौनक से आश्चर्य-चकित हो गया था। अब इन पहाड़ियों का नामकरण लेनिन पहाड़ियाँ हो गया है। जहाँ नेपोलियन के आक्रमण के समय यह पहाड़ियाँ मास्को नगर की हद्द के बाहर थीं, आज वे बढ़ते हुए मास्को नगर का हिस्सा बन गई हैं।

तो इन्हीं ऐतिहासिक पहाड़ियों पर मास्को विश्वविद्यालय ८०० एकड़ भूमि में बनाया गया है। विश्वविद्यालय की भव्य गगनचुम्बी इमारत के चारों ओर फैली भूमि में खेल के मैदान और सुन्दर उद्यान बना दिए गए हैं जो फूलों से भरे रहते हैं। वस्तुतः यह ८०० एकड़ भूमि का क्षेत्र मास्को नगर के अन्दर एक लघु नगर है जहाँ २०,००० विद्यार्थी और शिक्षक रहते हैं। मास्को विश्वविद्यालय की विशालता स्पष्ट है। सोवियत संघ के ३३ विश्वविद्यालयों में यह सबसे विशाल है और यह २२,००० विद्यार्थियों को शिक्षण प्रदान करता है, जिनमें से ३०० डाक-क्रम से शिक्षित होते हैं।

वर्तमान विशाल विश्वविद्यालय का बीजारोपण रूसी सम्राज्ञी एलिज़ाबेथ के शासन-काल (सन् १७४१-६२) में हुआ था। अपने प्रिय और प्रतिभावान दरबारी काउण्ट इवान शुलालोव की सलाह से सम्राज्ञी ने एक अकादमी की स्थापना की। इस कार्य का दायित्व तत्कालीन सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक और कवि माइखेल लोमोनोसोव को सौंपा गया। वे ही वस्तुतः मास्को विश्वविद्यालय के संस्थापक हैं। विश्वविद्यालय के मुख्य भवन के पीछे के भव्य उद्यान में लोमोनोसोव की पत्थर की मूर्त्ति है और वे सामने पड़ी भूमि की ओर देख रहे हैं। तात्पर्य यह है कि जिस दिशा में लोमोनोसोव देख रहे हैं उसी ओर को मास्को विश्वविद्यालय का और विकास होगा। योजनाएँ कार्यान्वित होने के लिए तैयार हैं।

संसार-प्रसिद्ध कुछ रूसी साहित्यकार इसी विश्वविद्यालय में शिक्षित हुए थे, यथा, चेखोव, गोनचारोव, लेरमोनतोव, तुर्गनेव, बेलिन्स्की और हर्टजेन।

मास्को विश्वविद्यालय के पचास प्रतिशत विद्यार्थी लड़कियाँ हैं। ब्रिटिश शिक्षा विशेषज्ञ प्रोफेसर एस० जुकरमन का अनुमान है कि रूस में इंजीनियरिंग शिक्षा पास करने वालों में २५ प्रतिशत स्त्रियाँ होती हैं और डाक्टरी परीक्षा पास करने वालों में स्त्रियों की संख्या ७० प्रतिशत होती है। अपने-अपने पेशों में स्त्रियों को वेतनादि में सब प्रकार से पुरुषों के बराबर स्थान प्राप्त है।

विश्वविद्यालय के कुल विद्यार्थियों में ९६ प्रतिशत को सरकारी वजीफ़ा मिलता है। जिन ४ प्रतिशत को वजीफ़ा नहीं मिलता उस का कारण यही है कि वार्षिक परीक्षाओं में और दर्जे के काम में वे समुचित तत्परता और प्रगति व नतीजे नहीं दिखाते। सरकारी

वजीफ़ा औसतन ५०० रूबल प्रतिमास होता है। मास्को में एक विद्यार्थी के निर्वाह के लिए यह रकम समुचित है। इस ५०० रूबल में से विद्यार्थियों को अपने रहने और खाने का खर्च और विश्वविद्यालय की फ़ीस इत्यादि देना होता है। पाठ्यक्रम की पुस्तकें उनको निःशुल्क प्राप्त हो जाती हैं, पर वर्ष समाप्त होने पर उनको लौटा देना पड़ता है। वैज्ञानिक विषयों के विद्यार्थियों को कुछ अधिक रकम दी जाती है। जो विद्यार्थी पढ़ने में तेज़ होते हैं और अच्छे नतीजे दिखाते हैं, तथा जो खेल-कूद में तथा अन्य सामाजिक एवं सांस्कृतिक गतिविधियों में आगे होते हैं, उनको भी उपर्युक्त रकम के अलावा कुछ और रकम प्रोत्साहन तथा इनाम के रूप में दी जाती है।

१७ और ३५ वर्ष के बीच के लोग विश्वविद्यालय में भर्ती हो सकते हैं। इन विद्यार्थियों के लिए माध्यमिक शिक्षा प्राप्त कर लेना आवश्यक है। साथ ही निम्न विषयों में एण्ट्रेन्स परीक्षा पास करना भी उनके लिए ज़रूरी है:—(१) रूसी भाषा और साहित्य; (२) एक विदेशी भाषा—अंग्रेज़ी सब से अधिक लोकप्रिय है और वैसे किसी भी विदेशी भाषा की एण्ट्रेन्स परीक्षा पास करना पर्याप्त है; (३) जिस विभाग में विद्यार्थी दाखिल होता हो उसके दो या तीन विषयों में विश्वविद्यालय में दाखिले के बाद भी विद्यार्थीगण किसी न किसी एक विदेशी भाषा की कक्षा में जाते रहते हैं।

मास्को विश्वविद्यालय में कुल २,३०० शिक्षक हैं। इनमें से ८६ रूस की विज्ञान अकादमी के सदस्य हैं अर्थात् बहुत उच्चकोटि के अधिकारी विद्वान हैं। मास्को विश्वविद्यालय का गणित विभाग और वायुगमन-विज्ञान विभाग संसार-प्रसिद्ध हैं; इसी विभाग के विद्वान ज़ुखोव्स्की, चाप्लीगिन और तुपोलेव विश्वविख्यात हैं। इनके अलावा मास्को विश्वविद्यालय में रसायनशास्त्र, भूगोल, इतिहास,

शब्दशास्त्र, दर्शनशास्त्र, पत्रकारिता इत्यादि की उच्चकोटि की शिक्षा दी जाती है।

शिक्षण-काल पाँच साल का होता है, जिसमें से प्रथम दो वर्ष सिद्धान्तों का गहन शिक्षण होता है। बाद के तीन वर्षों में शिक्षण-क्रम मुख्यतः प्रयोगशालाओं में व अन्य रूप से प्रयोगात्मक होता है। उदाहरणार्थ, जीव-जन्तुशास्त्र के विद्यार्थी को शिक्षण-काल का कुछ भाग किसी सामूहिक खेत या राजकीय खेत पर बिताना होता है। भूगोल के विद्यार्थी को कहा जा सकता है कि उत्तर या दक्षिण ध्रुव को जाने वाले अनुसंधान दल के साथ वह भी जाए। वस्तुतः कक्षा की शिक्षा को क्रियात्मक शिक्षा से अविच्छिन्न रूप से जोड़ना सोवियत शिक्षा-प्रणाली की विशेषता है।

पर इन सब बातों के भी ऊपर एक और बात की ओर सोवियत शिक्षा में बहुत ध्यान दिया जाता है। वह है विद्यार्थी को श्रेष्ठ सोवियत नागरिक बनने की शिक्षा और प्रेरणा। विद्यार्थियों को बराबर सोवियत समाज के प्रति उनके गहन दायित्व को समझाया जाता है। अपने स्वास्थ्य को ठीक रखना, उससे कहा जाता है, समाज के प्रति दायित्व को पूरा करना है। इसी उद्देश्य से उसे खेल-कूद में भाग लेने को प्रोत्साहित किया जाता है। इतना ही नहीं गर्मी की लम्बी छुट्टियों में उसे स्वास्थ्य स्थलों में और समुद्रतटों पर स्वास्थ्य-लाभ के लिए निःशुल्क सुविधा प्रदान की जाती है।

सरकारी तौर से मास्को विश्वविद्यालय केन्द्रीय संस्कृति मंत्रालय के अन्तर्गत है, जो सारे देश की शिक्षा को देखता है। प्रत्येक विद्यार्थी को आश्वासन प्राप्त है कि शिक्षा समाप्त करने पर सरकार को इसकी सूचना प्राप्त होगी और उसके लिए कोई उपयुक्त कार्य बताया जायगा। अतः बेरोजगारी की चिन्ता उनको नहीं रहती।

विद्यार्थियों का युवक संगठन है और वही विद्यार्थियों में अनुशासन स्थापित रखता है। दूसरे शब्दों में विश्वविद्यालय के विद्यार्थी स्व-अनुशासित हे। विद्यार्थियों की अनुशासन-विहीनता का रूस में नाम भी नहीं है। यदि कोई विद्यार्थी आलसी है, मन लगाकर नहीं पढता, या स्वार्थभाव दिखाता है, इत्यादि तो यह विद्यार्थी कमेटियाँ ही आलोचना द्वारा और प्रोत्साहन द्वारा उसे सुधारने का प्रयास करती है।

लेलिन पहाड़ी पर स्थित मास्को विश्वविद्यालय की गगनचुम्बी अट्टालिका की बत्तीस मंजिलों में २०,००० कमरे हैं। इनमें अध्यापकों के रहने के कमरे भी शामिल हैं, १४० लेक्चर देने के बड़े थियेटर कमरे हैं, १,५०० कमरों में प्रयोगशालाएँ हैं, पुस्तकालय अनेकों कमरों में फैला है, इत्यादि।

इस विशाल भवन के चारों ओर फैला मैदान और उद्यान, फव्वारे और सड़कें एक अनोखा दृश्य उपस्थित करते हैं। रात को जब सड़कों पर बिजली की बत्तियाँ जलती हैं, तो छटा और निराली हो जाती है। जहाँ अट्टालिका गगन को चूमती है वहाँ रात को एक लाल रोशनी जलती रहती है, जो मास्को के सभी भागों से दिखाई पड़ती हे। वह लाल रोशनी मास्को निवासियों को प्यारी है। वस्तुतः मास्को विश्वविद्यालय और उसकी वह गगनचुम्बी अट्टालिका सोवियत देश की शक्ति और दृढ़ता की प्रतीक हो गई है। मास्को नगर की ऊंची-ऊँची इमारतों में सबसे ऊंची वह इमारत, ऐसा लगता है सबों की स्वेच्छा से उस पद पर आसीन कराई गई है। उसकी महानता और उसकी ऊँचाई के आगे सब नत-मस्तक हैं। विद्या को वहाँ सर्वोच्च आदर प्राप्त है।

अजरबैजान का तैल-नगर बाकू

मास्को से बाकू के लिए हम तीन बजे रात को उड़े थे। सुबह
गत पर जब हमारी नींद खुली तो हमारा वायुयान स्टालिनग्राड
अड्डे पर उड़ रहा था। स्टालिनग्राड—और हमको रोमांच हुआ।
स्टालिनग्राड जहाँ हिटलरी फ़ौजों के दाँत खट्टे हुए, जहाँ रूसी मानव
ग़ा तो भयंकर अड़ा, जहाँ एक-एक कमरे के कब्जे के लिए
वेरोधी फौजों में दिनों-दिन लड़ाई हुई, जहाँ की चप्पा-चप्पा जमीन
ख़ून से लाल हुई, ऐसा स्टालिनग्राड, इतिहास में अजर, अमर।
हमको द्वितीय महायुद्ध के वे दिन याद आए जब हमने अखबारों में
पढ़ा था कि जलती इमारतों में और गोला-बारूदों के धुएँ के कारण
महीनों स्टालिनग्राड में सूर्य न दिखा। हमको ध्यान आया कि
हमारे प्रधान मंत्री नेहरू जी यहाँ आए थे, और उनकी वह फोटो
याद आई जो स्टालिनग्राड के मृत वीरों की स्मृति में बनी समाधि
के सन्मुख ली गई थी। पता नहीं क्या-क्या भावनाएँ उस समय
हमारे राष्ट्रनायक के हृदय में उठीं—वे जैसे अनन्त की ओर देखते
हुए बड़े गम्भीर और जैसे कुछ पीड़ित से खड़े हैं, बिलकुल निराली
है उस चित्र में नेहरूजी की मुद्रा।

करीब पौन घंटे की टिकान स्टालिनग्राड हवाई अड्डे पर थी,
और विचित्र कौतूहल से प्रेरित हम व्यस्त घूमते सोवियत नागरिकों
को देखते रहे कि यही वे लोग हैं जो उस दावानल में तपे थे,
और हम सोच रहे थे कितने लोहे के मानव यह होंगे। और वे सब
उस विशाल नवनिर्मित हवाई अड्डे पर सोवियत नागरिक की
सामान्य गम्भीर पर खुशदिल मुद्रा में अपने-अपने कार्यों में संलग्न थे।

फिर जब प्लेन उड़ा तो नीचे रूस की वोलगा दिखी। राहुल की पुस्तक "वोलगा से गंगा" की याद आई। ध्यान आया कि हमारे आर्य पूर्वज कभी इसी वोलगा के तट पर घूमे थे, रहे थे। स्वातन्त्र्य संग्राम के दिनों का एक गायन याद आया :

"उस दिन वोल्गा तड़प उठी थी,
तुम भी गंगे अब तड़प उठो"

हमको प्रसन्नता हुई, हमने इनकी वोलगा भी देख ली। और प्लेन अब वोलगा के ऊपर-ऊपर ही लगभग उड़ा। यहाँ से बिलकुल तिरछी चलती हुई वोलगा अस्त्राखान नामक नगर जाती है और वहीं कास्पियन सागर में समा जाती है। और प्लेन करीब ढाई-तीन घंटे कास्पियन सागर पर उड़ता रहा। इसी कास्पियन सागर के तट पर ईरान की सरहद से लगभग डेढ़ सौ मील ऊपर संसार प्रसिद्ध तैलनगर बाकू है।

बाकू सोवियत संघ के अजरबैजान प्रान्त की राजधानी है। सौ वर्ष पूर्व यह लगभग एक हजार लोगों की बस्ती थी। पचास वर्ष पूर्व यहाँ की बस्ती १२,००० थी। और अब बाकू दस लाख की आबादी का आधुनिक नगर है, कास्पियन तट पर बसा हुआ, बड़ा ही सुन्दर, और समुद्र किनारे की सड़कें और बस्ती व बिजली की रोशनी बम्बई की मेरीन की याद दिलाती हैं।

अजरबैजानी ईरानी की तरह ही हैं, दोनों एक ही नस्ल के हैं। और बड़ा प्राचीन उनका इतिहास है। हाल में ही पश्चिमी अजरबैजान के एलदार मैदान में इरानोथेरियस नामक एक विशाल जन्तु के अवशेष मिले हैं। गैंडे की ही जाति का यह विशाल जन्तु कोटि वर्ष पूर्व इस पृथ्वी पर रहता था। संसार में अब तक केवल

एक और स्थल पर ऐसे अवशेष मिले हैं। वह हैं ईरान में मरागा नामक स्थान के निकट।

अजरबैजानी अपने इतिहास पर और अपनी संस्कृति पर गर्व करते हैं। और भारत से उन का बहुत पुराना सम्बन्ध है। वस्तुतः अनेकानेक अजरबैजानी हमको बिलकुल भारतीय जैसे लगे। उनकी भाषा में सैकड़ों ऐसे शब्द हैं जो भारत में प्रचलित हैं, यथा वकील, वकालत, मकान, जबान, हयात, पाबन्दी, इत्यादि। हिन्दुस्तान के बारे में वहाँ बड़ी जानकारी है। लगभग सात सौ वर्ष पूर्व वहाँ के एक महान् कवि ने कुछ भारतीय गीतकाव्यों का अजरबैजानी भाषा में अनुवाद किया था। भारत और अजरबैजान के बीच इस प्रकार बड़ा पुराना आदान-प्रदान रहा है, और दोनों के बीच बड़ा व्यापार भी था।

भारत और अजरबैजान के इस पुराने सम्बन्ध के संदर्भ में कुछ और कह देना रुचिकर होगा। ऊपर हमने अस्त्राखान नगर की चर्चा की है। जहाँ वोल्गा कास्पियन सागर में गिरती है, इस अस्त्राखान नगर में आज भी एक बस्ती है जिसे 'इंडिसकाया' कहा जाता है, अर्थात् भारतीय। यहाँ पर एक हिन्दू मन्दिर का भग्नावशेष आज भी है और हाल में सोवियत वैज्ञानिकों ने वहाँ खुदाई कर तथा अन्य अनुसन्धान कार्य द्वारा अस्त्राखान की इसी "इंडिसकाया" बस्ती पर रोशनी डाली है। दो सौ वर्ष पूर्व इस बस्ती में काफी हिन्दुस्तानी व्यापारी रहते थे। वस्तुतः तत्कालीन भारत-रूस व्यापार का सबसे प्रमुख केन्द्र यही था। सत्रहवीं शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षों में मास्को, यारोस्लाव्ल, नोवोग्रेड इत्यादि बड़े शहरों के लिए सामान लेकर भारतीय व्यापारी अस्त्राखान पहुँचे। सन् १६१७ में जार ने अस्त्राखान के गवर्नर को आज्ञा दी कि भारत से व्यापार को

बढ़ावा देने के लिए भारतीय व्यापारियों से बहुत अच्छा व्यवहार किया जाए। फलस्वरूप गवर्नर ने भारतीय व्यापारियों के साथ रियायती व्यवहार किया जिस के फलस्वरूप वह "इंडिसकाया" बस्ती अस्त्राखान में बसी। सन् १७६० में अस्त्राखान में भारतीयों की ७८ दूकानें थीं। यह लोग ज्यादातर पंजाब और राजपूताना के थे।

भारतीय व्यापारी रेशम, सूती वस्त्र, हीरे जवाहरात, ऊन कार्पेट, सुगन्धियाँ रूस ले जाते थे और वहाँ से चमड़ा, फर, लिनेन और किरमिच हिन्दुस्तान लाते थे। सन् १७३७ और १७४४ के आठ वर्षों में भारतीयों ने कुल एक लाख रूबल का सामान बेचा, जो रकम उन दिनों के लिहाज से बहुत बड़ी है। पुराने रूसी काग-जातों को देखने से पता लगता है कि अमरदास, रामचन्द और अलीमचन्द नामक भारतीय व्यापारियों ने काफी रकम कर के रूप में रूसी सरकार को दी, अर्थात् वे काफी सफल व्यापारी थे और उन्होंने अच्छी रकम कमाई। सन् १८२६ में साबरा मोहन-दास नामक एक व्यापारी ने लगभग एक लाख रूबल का माल अस्त्राखान में बेचा। मोहनदास ने वहाँ एक विशाल भवन भी बनवाया जो आज भी मौजूद है। इन्हीं व्यापारियों ने एक मन्दिर भी वहाँ बनवाया था। अठारहवीं शताब्दी के अन्त में ईरान की राज-नीतिक स्थिति डाँवाडोल हुई और डाकुओं के कारण मार्ग खतरनाक हो गया। फलस्वरूप १६वीं शताब्दी के प्रारम्भ होते-होते भारतीय व्यापारियों का अस्त्राखान जाना बन्द हो गया। अस्त्राखान में कुछ भारतीय साधू संन्यासी रह गए और कुछ मालदार भारतीय व्यापारी भी वहीं बस गए। वे रूसी जनता में समा गए।

तो इन भारतीय व्यापारियों के मार्ग में बाकू पड़ता था। यहाँ

कोई व्यापार केन्द्र तो तब नहीं था, पर मार्ग का महत्त्वपूर्ण पड़ाव वहाँ अवश्य था। तो इन्हीं भारतीय व्यापारियों ने बाकू में भी एक मन्दिर बनवाया। यह मन्दिर हमने देखा। एक पचास-साठ फ़ीट लम्बा अहाता था जिसके बीच में एक हवन कुण्ड बना था। अहाते के चारों तरफ कोठरियाँ थीं जहाँ लोग ठहर सकते थे। फिर एक लम्बी सी दालान थी जहाँ धर्म चर्चा, कथा, प्रवचनादि होते थे। कोठरियों के बाहर हमने लगभग एक दर्जन खुदे हुए पत्थर देखे जो कोठरियों के दरवाजे के ऊपर दीवार में जमा दिए गए थे। इनमें हिन्दी व गुरुमुखी में शब्द अंकित थे और एक पत्थर उर्दू में भी था।

बाकू नगर की मुख्य बस्ती से थोड़ा हटकर बने इस मन्दिर को जब हम देखने गए तो पास-पड़ोस के लड़के और रहने वाले एकत्रित हो गए। "इंडुस आया", "इंडुस आया", इसकी पुकार मची, और वे बच्चे, वे माएँ कितने हिन्दुस्तानियों जैसे लगे। अजरबैजान सरकार का पुरातत्व विभाग इस हिन्दू मन्दिर की देख-रेख कर रहा है और उसके सम्बन्ध में अनुसन्धान कार्य भी हो रहा है, शीघ्र ही एक पुस्तिका प्रकाशित होने वाली है।

बाकू की सड़कों पर घूमते और अजरबैजानियों को देखते बरबस हिन्दुस्तान के वातावरण का, वहाँ के लोगों का ध्यान आता है, इतना एक-से वे लगते हैं। वहाँ की कहानियाँ, किस्से, लोकोक्तियाँ सब हिन्दुस्तान जैसी लगती हैं। बाकू शहर के बन्दरगाह पर, ऐन समुद्र में एक छोटा सा किला जैसा भवन दिखा, उसका वर्णन बताया गया। एक शक्तिशाली शासक था, जिसकी सुन्दर स्त्री थी। जो कन्या हुई वह और भी सुन्दर हुई और फिर स्त्री मर गई। कन्या बड़ी सुन्दरी हुई, और शासक ने अपनी ही कन्या से

विवाह करना चाहा। कन्या ने कहा कि तुम समुद्र में एक भवन बनवाओ और उसी के बनने के बाद ऐसा हो सकता है। जब भवन बना और गृह-प्रवेश हुआ तो वह कन्या सबसे ऊपर की मंजिल पर चढ़कर समुद्र में कूद पड़ी और मर गई। इस घटना के आधार पर अजरबैजान में कई गीत-काव्य और नाटक लिखे गये हैं।

पर यह सब पुराने बाकू की बातें हैं, नया बाकू इससे भिन्न है, बड़ा आधुनिक है। रूसी क्रान्ति के पूर्व अजरबैजान में अंध-विश्वास और पिछड़ेपन का साम्राज्य था और मुल्लाओं व सामन्तों का एकाधिपत्य था, अशिक्षा सर्वत्र व्याप्त थी। अब वहाँ १४ विश्वविद्यालय हैं और वैज्ञानिक अनुसंधान के ६० केन्द्र हैं। विश्व-विद्यालय में ३,००० विद्यार्थी पढ़ते हैं और ६,००० विद्यार्थी पत्र-प्रथा द्वारा शिक्षित होते हैं। विश्वविद्यालय में लगभग ४०० प्रोफेसर और शिक्षक हैं। वहाँ की माध्यमिक पाठशालाओं में इस वक्त ३०,००० विद्यार्थी पढ़ते हैं। कृषि-विज्ञान के विकास पर और कृषि-अनुसंधान पर वहाँ बड़ा बल दिया जाता है।

बाकू में हमने अजरबैजान प्रान्त का विशाल संग्रहालय देखा। अजीज बेकोवा नामक एक महिला उसकी डायरेक्टर हैं। वह विदुषी महिला हैं और नए अजरबैजान की उदाहरण हैं। वहाँ पहले स्त्रियाँ पर्दे में रहती थीं और पुरुषों की गुलाम थीं। अब पर्दा प्रथा समाप्त है और स्त्रियों को पुरुषों के बराबर स्थान प्राप्त है। शिक्षा में वे अब बहुत आगे हैं। यह संग्रहालय अजरबैजान के सम्बन्ध में एक विश्व कोष के समान है। ८५,००० वर्ग मील के क्षेत्र में निवास करने वाले लगभग ३५ लाख अजरबैजानियों की पुरानी संस्कृति है। ईसा पूर्व ७००वीं शताब्दी में वहाँ मीजिया वंश का शासन था। उसके भी पहले मान्ना वंश वालों का वहाँ राज्य था, पर उनके

सम्बन्ध में अभी और अनुसन्धान कार्य चल रहा है। अजरबैजान में प्रचुर प्राकृतिक सम्पदा है। वहाँ गंधक, क्रोमाइट, आरसेनिक, संगमरमर, ताँबा, लोहा, कोबल्ट, बेरिल, जिप्सम, अलूमीनियम तथा अन्य अनेक धातु पाये जाते हैं। नमक की वहाँ बड़ी खदानें हैं और रूस के अनेक हिस्सों को नमक वहीं से जाता है।

परन्तु अजरबैजान और उसका नगर बाकू संसार में अपनी तैल सम्पदा के लिए प्रसिद्ध है। कहा जाता है कि पृथ्वी के गर्भ में जितना तैल वहाँ है उतना सम्भवतः संसार में कहीं नहीं है। क्रान्ति के पूर्व वहाँ केवल चार तैल-क्षेत्र थे। अब वहाँ १४ तैल-क्षेत्र हैं जो बराबर काम करते हैं। वस्तुतः बाकू नगर के तैल इलाके में जब आप जाइये तो विचित्र दृश्य दिखाई पड़ता है। हजारों-हजारों लोहे के बने स्वचालित यंत्र चलते दिखाई पड़ते हैं, उनका बिलकुल जंगल सा लगता है। तैल निकालने के पूरे काम का अद्भुत यंत्री-करण हो गया है और मानव श्रम की आवश्यकता न्यूनतम हो गई है। हाँ सजग देख-रेख रहती है।

गत वर्षों में वहाँ के मानव ने वह कर दिखाया जो दैवी कृत्य के समान है। बाकू से लगभग साठ मील की दूरी पर कास्पियन नगर में लगभग पाँच हजार व्यक्तियों के रहने के लायक एक टापू बनाया गया है। यहाँ मकानात हैं, सिनेमा हैं, सड़कें हैं, मोटरें चलती हैं। यह टापू कास्पियन सागर में उस जगह बनाया गया जहाँ तैल बहुत बड़ी मात्रा में समुद्र की भूमि-सतह के नीचे समाया है। पूरी मशीनरी वहाँ लगी है और बराबर तेल निकलता है। हमको बताया गया कि कास्पियन सागर में अनेक अन्य स्थल हैं जहाँ बहुत तैल है और वहाँ भी निकट भविष्य में ऐसे ही टापू बसाने का कार्यक्रम है।

वस्तुतः बाकू की तैल सम्पदा की ओर पाश्चात्य साम्राज्यवादियों ने बहुत पहले से अपनी लालच भरी निगाहें डाली हैं और ज़ारशाही के जमाने में भी ईरान की पेचीदी राजनीति का एक कारण ब्रिटिश साम्राज्यवादियों की चालें थीं, जिनका उद्देश्य अंततोगत्वा ईरान के रास्ते से बाकू तैल तक पहुँचना था। हिटलर की स्टालिनग्राड तक दौड़ का मुख्य उद्देश्य इसी बाकू तैल-क्षेत्र तक पहुँचना था, पर वह स्वप्न धूल-धूसरित हो गया।

बाकू में हमको अपने आठ भारतीय विद्यार्थी मिले। यह भारत सरकार द्वारा वहाँ तैल अन्वेषण विज्ञान की शिक्षा लेने गए हैं। सबके सब रूसियों और अज़रबंजानियों के अपार स्नेह और कृपाभाव की भूरि-भूरि प्रशंसा कर रहे थे। बाकू में तैल निकालने के अलावा तैल शोधन कार्य भी होता है। और इन विशाल कारखानों में हमने अजरबैजानी तैल-विशेषज्ञों को उच्च से उच्च पद पर पाया। वस्तुतः सोवियत का तैल-विज्ञान सर्व सम्मति से बहुत विकसित है।

बाकू में हमने यह तैल की दुनिया देखी, और फिर तैल के धुएँ से भरे नगर के भाग से हट कर बसे हुए हिस्से में हमने उस व्यस्त नगर का उल्लासमय जीवन देखा। हमको संयुक्त राज्य अमरीका के तैल केन्द्रों का खयाल आया और अमरीकी उपन्यासकार अप्टन सिनक्लेयर के प्रसिद्ध उपन्यास "आयल" (तैल) की याद आई। विशाल तैल सम्पदा की व्यक्तिगत मिलकियत से पैदा कहाँ वहाँ का अमानुषिक, शोषणपूर्ण दुःखी वातावरण और कहाँ तैल सम्पदा की सामाजिक मिलकियत से पैदा यह शोषणमुक्त, खुशी की दुनिया।

बाकू शहर की आबादी दस लाख हो गई है, पर निर्माण कार्य तेजी से चल रहा है। शहर बढ़ता ही जा रहा है और बड़ा

सुन्दर नया बाकू बन रहा है। वहाँ वृक्ष नहीं थे। क्रान्ति के पूर्व पूरे शहर में केवल १० हेक्टेयर भूमि पर वृक्ष थे। अब ५०० हेक्टेयर भूमि पर वृक्ष लग गये हैं। यह भी प्रकृति से संघर्ष का एक कदम है। बाकू शब्द "वात कू बे" से बना है, जिसका अजरबैजानी भाषा में अर्थ है, "हवा का झकोरा"। साल में २५० दिन बाकू शहर पर उत्तर से वायु का जोरदार झकोरा आता है। यह वृक्षारोपण कार्यक्रम उस झकोरे की शक्ति को क्षीण करने के लिए उठाया गया और इन वृक्षो ने बाकू नगर को बड़ा सुन्दर और सुहावना बना दिया है।

अजरबैजानी को बाकू पर और अपने सोवियत संघ पर बड़ा गर्व है। उनको अपने भविष्य पर पूरा विश्वास है। वे तेजी से दृढ़ता के साथ अपने प्रगति-पथ पर अग्रसर हो रहे हैं।

अली सोहबत

अली सोहबत हमको तैल-नगर बाकू में मिले। हम बाकू लगभग ग्यारह बजे दिन में पहुँचे थे। लगभग १,५०० मील उत्तर-पश्चिम में स्थित मास्को सर्द था, पर अगस्त के महीने के सूर्य से बाकू में तपिश थी। बाकू हवाई अड्डे पर ही अली सोहबत अपने कई अन्य साथियों के साथ थे। लगभग पचास की उनकी अवस्था है, घने बालों में सफेदी आ गई है, और खुला भारतीयों जैसा उनका गेहुँआ रंग है। इकहरा उनका बदन है, सादा कोट और पतलून वे पहनते थे, और बड़े स्नेह से वे हमसे मिले। उनके हाथ मिलाने के ढग से, उनके मुस्कराते चेहरे से और उनकी बड़ी-बड़ी सुन्दर आँखों से मैत्री और स्नेह छलक रहा था।

हमको बताया गया कि अली सोहबत अजरबैजान प्रान्त की विज्ञान अकादमी (विद्वन्मण्डली) के उपाध्यक्ष हैं। रूसी हिसाब किताब से यह बहुत ऊँचा ओहदा है, और प्रकाण्ड विद्वान् ही इस पद तक पहुँच सकता है। दोपहर का खाना अली सोहबत ने साथ-साथ खाया और फिर हमको साथ लेकर उन्होंने बाकू दिखाया, समझाया, साथ एक दो लोग, और भाषान्तरकार था और हम रात देर तक उनके साथ रहे। हमने उनके साथ अजरबैजान का संग्रहालय देखा, बाकू के कुछ उद्योग देखे और रात वे हमको एक संगीत समारोह में ले गए। खुली हवा का वह थियेटर था। अजरबैजानी गीत और नृत्य चल रहा था। बीच में भारतीय नारी के ही समान वस्त्र पहने, जूड़े में फूल लगाये, माथे पर लाल बिन्दी लगाए एक अजरबैजानी युवती ने भारतीय फिल्मी गीत गाए। अली

सोहबत बड़े प्रसन्न थे। सच में दिन भर के साथ में हमने उनको सदा बालकों की तरह सरल और प्रसन्न देखा, उनमें सादगी पाई और खूब ठहाका मार हँसते पाया। उनकी वह सादगी और ठहाका देख और सुन कोई शायद कल्पना भी नहीं कर सकता कि यह प्रकाण्ड विद्वान् अजरबैजान विज्ञान अकादमी का उपाध्यक्ष है।

रात जब वे जाने लगे तो मैंने पूछा कि क्या साथ खाना वे नहीं खाएँगे। उन्होंने कहा, दिन में आपके साथ खाया, अब रात बीबी के साथ खाना है, वह मेरे इन्तजार में होगी। और क्षमा माँगते हुए जब वे अपनी स्वाभाविक सच्चाई और सादगी से विदा होने लगे तो मैंने उनसे कहा कि उनको देखकर भारत की एक बात याद आती है। हमारे पूर्वजों की शिक्षा है कि पांडित्य से, विद्वत्ता से मनुष्य को और विनम्र होना चाहिए, पंडित को विनम्रता ही शोभा देती है, और उनमें हमको इसी का उदाहरण दिखता है। वे कुछ शर्मा से गये, नांह नूह कुछ करते हुए अन्त में कहा: "लेनिन ने हमको शिक्षा दी है कि बोलशेविक को सदा विनम्र होना चाहिए, विनम्रता बोलशेविक का आभूषण है।"

चार दिन हम बाकू में रहे और चारों दिन अली सोहबत का बराबर साथ रहा। बाकू का हिन्दू मंदिर देखकर एक दिन हम अली सोहबत तथा अन्य लगभग डेढ़ दर्जन अजरबैजानियों व रूसियों के साथ कास्पियन सागर के बगल-बगल दौड़ती एक सड़क पर जा रहे थे। दोपहर का समय था, और सामने कास्पियन की लहरें उठ रही थीं। कुछ साथियों की राय हुई कि सागर में स्नान करना चाहिए, पर मैं कुछ हिचक रहा था, अन्त में सबकी एक राय के आगे झुकना पड़ा। मोटरें रुकीं, और जाँघिया पहने डेढ़ दर्जन व्यक्ति कास्पियन में स्नानार्थ उतरे। और अली सोहबत उस उछल-कूद में सबके

आगे थे, तैरते हुए भी वह समुद्र में सबके आगे निकल गए। फिर हमने देखा कि समुद्र से निकल वे पालथी मार कर किनारे भूमि पर बैठ गए और सारे शरीर पर उन्होंने बेतरह मिट्टी और बालू चपोत लिया; माघ मेले में दिखाई पड़ने वाले साधू से लगने लगे। बिलकुल अलमस्त, हँसते, चीखते, मजाक करते उस विद्वान् का रूप देख हम ताज्जुब में थे। हमने कहा भी कि यह क्या हरकत है तो उन्होंने कहा कि शरीर की सफाई के लिए यह मिट्टी-बालू साबुन से कहीं बढ़कर है। हमको राजर्षि टंडन जी की याद आ गई। और फिर वे पुनः समुद्र में कूदे, दूर तक तैरकर गए, मिट्टी बालू को शरीर से साफ किया और हँसते हुए बाहर आ गए।

चार दिन अली सोहबत का साथ रहा, और बड़ी बातें उनसे हुईं। पहले दिन रात को हमने उनके पांडित्य की और उनकी विनम्रता की चर्चा अवश्य की थी, पर उस दिन की बातों में हमने उनका हास्य और विनोद ही अधिक देखा, उनकी प्रखर बुद्धि और पांडित्य का आभास कम ही मिला था, वे शायद स्वयं पहले दिन जान-बूझ कर चुप रहे। पर दूसरे दिन से उनके व्यक्तित्व का यह रूप प्रगट होने लगा, और चार दिन बाद उनसे बिदा होते-होते हम उनके पांडित्य से चकित हो गए थे। बाकू घूमते, कारखानों और तेल यंत्रों को देखते वे अजरबैजान के इतिहास पर, कारखानों की पेचीदगियों पर, तेल समस्याओं पर, और प्रायः सब ही विषयों पर इतनी जानकारी की बातें करते थे कि बस सुनते ही बनता था। उनको यूरोपीय इतिहास का गहन ज्ञान है, दर्शन शास्त्र के वे प्रकाण्ड विद्वान हैं, अमरीकी पूँजीशाही की एक-एक बात से वे परिचित हैं, और रूसी इतिहास के तो वे विशेषज्ञ हैं ही।

बाकू में एक ऊँची पहाड़ी पर बसे किरोवपार्क में वे हमको ले

गए। किरोव रूसी क्रान्ति के महान् नेताओं में थे। लेनिनग्राड उनका कार्यक्षेत्र था, और सन् १९३४ में कुछ क्रान्ति-विरोधियों के षड्यंत्र के फलस्वरूप उनकी हत्या कर दी गई थी। किरोव का सोवियत संघ में आज भी बड़ा आदर है, और उस सुन्दर पार्क में किरोव की एक बड़ी ऊँची भव्य मूर्ति बनी है। अली सोहबत ने हमसे कहा—"यह व्यक्ति किरोव लेनिनग्राड में रहता था, यहाँ से तीन हजार मील दूर। पर हमने किरोव का आदर अजरबैजान में किया, कारण हमारे सोवियत देश में प्रान्तीयता है ही नहीं, हम सब एक हैं, और किरोव ने इस नए देश और समाज को गढ़ने में बड़ा भाग लिया था।" और तब वे किरोव के जीवन पर, उनके समय में रूस की कठिन स्थिति, क्रान्ति-विरोधियों के षड्यंत्रों, इत्यादि-इत्यादि पर जाने कितनी बातें बताते रहे।

एक दिन हम एक स्टीमर पर बैठकर कुछ दूर कास्पियन सागर में घूमने गये। रात हो चुकी थी और दूर बिजली की रोशनी में लपलपाता बाकू नगर बड़ा भव्य और सुन्दर लग रहा था, और पृष्ठभूमि में किरोव की वह विशाल मूर्ति दिखाई पड़ती थी। और इस वक्त अली सोहबत ने अपने सोवियत देश की बड़ी बातें कीं। उन्होंने कहा मुझे अपना बचपन याद है, जब हमारा अजरबैजान इतना पिछड़ा, इतना अशिक्षित, इतना निर्धन था। पर अब हमारा प्रदेश कितना आगे बढ़ गया है, शिक्षा कितनी व्यापक है और सर्वत्र समृद्धि है। अपने अजरबैजान से और अपने सोवियत देश से उनको कितना प्यार है, यह स्पष्ट था। उन्होंने कहा—"हमारा सोवियत देश, और हमारे सोवियत नागरिक कुछ खास हो गए हैं। हमारी चतुर्मुखी प्रगति हुई है। यहाँ सब चीज जनता की है, जनता ही यहाँ सर्वोच्च है। हम जानते हैं कि विदेशों में साम्राज्यवादी-पूंजी-

वादी सदा यह प्रचार करते हैं कि रूस में जनता दबी है, गुलाम है। पर वे कितनी गलत बात करते हैं, यह हम जानते हैं।" और बड़े गर्व और विश्वास के साथ उन्होंने कहा—"हमारा देश अब उठकर बहुत आगे बढ़ चुका है, कोई भी हमको गिरा नहीं सकता, कारण जनता ही यहाँ सब कुछ है।"

कितनी ही और बड़ी दिलचस्प उनकी बातें होती थीं। और बातों के बीच वे छोटे-छोटे किस्से इस प्रकार गूँथ देते थे कि उनकी दिलचस्पी और भी बढ़ जाती थी। उनका बताया एक किस्सा याद आता है। सन् १९२६ में जब स्टैलनी बाल्डविन ब्रिटेन के प्रधान मंत्री थे तो संयुक्त राज्य अमरीका के कुख्यात नगर शिकागो का एक सुप्रसिद्ध करोड़पति लन्दन आया। बाल्डविन ने उसे तथा कुछ अन्य लोगों को भोजन के लिए आमन्त्रित किया। चुस्कियाँ जब लग रही थीं तो बाल्डविन ने कहा कि टेबिल पर बैठे महानुभावों में जो सबसे नए किस्म की बात कहेगा उसे दस हजार पौण्ड इनाम दिया जायगा। सबके पहले उसी अमरीकी करोड़पति ने बोलना शुरू किया। उसने कहा—"शिकागो नगर के एक सुसभ्य अमरीकी···।" बस यहीं बाल्डविन ने उनको रोककर दस हजार पौण्ड का इनाम उन्हीं को दे दिया। वह आश्चर्य में पड़कर बाल्डविन की ओर देखने लगे कि आखिर कौन ऐसी नई बात उन्होंने कही कि उनको इनाम मिल गया। बाल्डविन ने जवाब दिया: "जनाब ऐसी निराली बात कौन कह सकता है कि अव्वल तो अमरीकी, फिर सुसभ्य, सो भी शिकागो नगर से आने वाला।" और अली सोहबत खूब हँसे। स्मरण रहे कि शिकागो नगर अपनी गुण्डागर्दी और डाकू गिरोहों के लिए संसार-प्रसिद्ध है।

भारत देश की भी उनसे बड़ी बातें हुईं। उनको भारत के

इतिहास का श्रेष्ठ ज्ञान है। बातचीत के दोरान में वे कौटिल्य की चर्चा लाए, सम्राट् अशोक के एक धर्मलेख की चर्चा की, हिन्दू और मुस्लिम मजहब को निकट लाने के लिए अकबर के प्रयास की भी चर्चा आई। भारत की ललित कला और संस्कृति की जानकारी उनकी सराहनीय थी। और भारत के वे बड़े प्रशंसक हैं। उन्होंने एक भोज में एक टोस्ट भेंट करते हुए कहा था—"हमारा इतिहास का ज्ञान हमको बताता हैं कि जब आज के तथाकथित सभ्य पश्चिमी साम्राज्यवादी देश जंगली थे तब संसार में गंगा और यांगत्सी के तट पर बड़ी महान् संस्कृतियों का जन्म हुआ था। वस्तुतः महान् भारत और चीन देश मानव के अन्दर विद्यमान मौलिक गुणों को शुरू से संजोए आए हैं, और संसार को उन्होंने शिक्षित किया है। साम्राज्यवाद को हम केवल इसीलिए बुरा नहीं कहते कि उसने इन महान् देशों का निर्दयतापूर्ण शोषण किया, बल्कि इसलिए भी कि उसने इनकी महान् संस्कृति और कला को भी विनष्ट करने का घृणित प्रयास किया।"

अपने भारत देश के लिए इन स्नेह शब्दों को उस सुदूर देश में सुनकर हम बड़े प्रसन्न हुए, और उपस्थित सज्जनों ने तालियाँ बजाईं। और अली सोहबत उसके बाद कुछ तमतमा कर बोले—"पर ये प्राचीन देश और इनकी संस्कृति अमर है, उनको साम्राज्यवादी भला क्योंकर समाप्त कर पाते। और आज स्वतन्त्र भारत पुनः महान् नेता नेहरू के नेतृत्व में संसार को मनुष्यत्व का, सहनशीलता का और भाई-चारे का अपना अमर सन्देश दे रहा है। यह कोई आकस्मिक घटना नहीं कि आज के संकटग्रस्त संसार को पंचशील का सन्देश गंगा और यांगत्सी को संस्कृति के देशों ने दिया।"

अली सोहबत ने बातों के दौरान भारत के आर्थिक विकास

की बड़ी चर्चा की। हमारे पंचवर्षीय आयोजनों के विषय में उनकी काफी जानकारी है, और उन्होंने हमारे भूमि-सुधारों की मंथरगति की चर्चा भी की। उनका अपना मत था कि भारत को शीघ्रातिशीघ्र अपना बृहद् उद्योगीकरण करना चाहिए, "क्योंकि बिना भारी उद्योगीकरण के स्वतन्त्रता की रक्षा कर सकना असम्भव है।" और उन्होंने भी वह प्रश्न किया जो हमने रूस में अनेक जगह सुना, अर्थात् भारत के विदेशी व्यापार में और भारतीय उद्योगों व बैंकिंग प्रणाली में अभी तक ब्रिटिश पूंजी की इतनी प्रधानता क्यों बनी है।

चौथे दिन रात ढाई बजे हमको हवाई जहाज पकड़कर कीव जाना था। सुबह से अली सोहबत साथ-साथ घूम रहे थे, और थकावट उनके चेहरे पर लिखी थी। हमने बहुत कोशिश की कि होटल में ही उनसे विदाई ले लें पर वे हवाई अड्डे पर पहुँच गये थे, और बातें चलती रहीं। हवाई अड्डे के बाहर सुन्दर उद्यान था, हलकी-हलकी चाँदनी थी, और हम एक बेंच पर बैठे थे। सुन्दर प्रकृति से ही स्पन्दित होकर शायद अली सोहबत ने एक किस्सा सुनाया, जिसका उनके पास अगाध भण्डार है।

अली सोहबत का किस्सा महान् कवि शेख सादी के सम्बन्ध में था। सर्दी के दिन थे, रात ओस गिरी थी। सुबह होते ही शेख सादी बाग में घूमने गए। ओस की बूँदों से फूलों की पत्तियाँ लदी थीं, और फूलों में बड़ी बहस चल रही थी कि कौन सबसे अधिक सुन्दर है। गुलाब ने अपनी बड़ाई की कि मैं तो फूलों का राजा हूँ ही, मुझे कौन पा सकता हे। चमेली ने मुँह बिचका कर कहा कि तू काँटे वाला है, तेरा एक रंग नहीं, गिरगिट की तरह रंग बदलता है. मैं सदा सफेद रहती हैं और मेरी खशब त क्या पाएगा।

बगल की लिली इस पर हँसी, कहा रंग ही अच्छा हो, या केवल खुशबू ही तेज हो तो वह एकांगी सौन्दर्य है। सौन्दर्य के लिए भी सन्तुलन जरूरी है और वह मेरे पास है। गर्ज यह कि बड़ी बहस रही और मैदान उस दिन लिली के हाथ रहा। तो शेख सादी ने लिली का फूल तोड़ लिया, घर आए और बीवी को फूलों की सब बहस सुना कर कहा कि लिली को तोड़कर लाया तुम्हें देने के लिए कि वह देख ले कि उससे भी खूबसूरत कोई है। और अली सोहबत ने फिर कहा कि कवि की बीवी इस पर बड़ी प्रसन्न हुई और उसने शेख सादी को प्यार किया। और किस्सा सुना अली सोहबत खूब हँसे।

प्लेन जाने तक अली सोहबत हवाई अड्डे पर साथ रहे। उनसे हम भारी हृदय से बिदा हुए। चार दिन के साथ में ही ऐसा लगा कि वे हमारे आजीवन साथ रहे हों। उन्होंने बार-बार फिर आने की दावत दी।

हम नहीं कह सकते कि फिर कभी इस जीवन में अली सोहबत से भेंट होगी या नहीं। पर हम जानते हैं कि यदि हम कभी मिलेंगे तो हमारी मैत्री वैसी ही कायम पाई जायगी। वे व्यस्त पुरुष हैं। उन्हीं दिनों उन्होंने आगामी दिनों का एक भारी कार्यक्रम बताया था। पर यह भी विश्वास है कि वे कभी अपने मित्रों को नहीं भुलाएँगे। अली सोहबत की विशाल आत्मा है, पांडित्य और विनम्रता का उनमें आदर्श संयोग है। वे गहरे देशभक्त हैं और मानवता के प्रेमी और पुजारी हैं। ऐसे ही नागरिकों से सोवियत देश इतना महान् हुआ है।

सोशलिस्ट नगर सुमगाइत और "मीर पबिजित वायनू"

"सुमगईत" शब्द के अर्थ हैं : "लौटा हुआ पानी ।" सुमगईत जाते वक्त मार्ग में एक बड़ी झील दिखी थी । बताया गया कि वह पानी लगभग बारह वर्ष पूर्व मानवीय प्रयास से बाँधा गया था । और उस झील के चारों तरफ राजकीय खेत और सामूहिक खेत बनने-बसने लगे हैं । इसी "लौटे हुए पानी" के निकट बसे होने के कारण ही सुमगईत का नामकरण हुआ ।

सुमगईत को कई लोगों ने 'सोशलिस्ट नगर' की संज्ञा प्रदान की । वैसे तो सारा रूस देश ही सोशलिस्ट है, तो केवल इस नगर के लिए यह संज्ञा क्यों ? बताया गया कि यह नगर केवल आठ-दस वर्ष पुराना है । उसके पहले वहाँ एक झोंपड़ी भी न थी । वस्तुतः सारे रूस देश में अनेकानेक ऐसे नगर बने-बसे हैं और इनको सामान्यतः 'सोशलिस्ट नगर' कहा जाता है ।

इन 'सोशलिस्ट नगरों' का बनना सोवियत संघ की उत्तरोत्तर विकसित होने वाली आर्थिक व्यवस्था का फल है । सुमगईत के निर्माण का कारण भी यही है । यह नगर बाकू से लगभग चालीस मील की दूरी पर कास्पियन सागर के तट पर बसाया जा रहा है और वस्तुतः यह तैल नगर बाकू का पूरक औद्योगिक नगर है ।

बाकू के तैल-यन्त्रों के लिए और तैल-शोधक कारखानों के लिए किस्म-किस्म के लोहे के ट्यूब तथा अन्य ऐसी ही चीजों की जरूरत रहती है । फिर बाकू में ही प्रत्येक वर्ष लगभग पाँच लाख टन धातु बेकार होकर तैल-यन्त्रों और तैल-शोधक कारखानों से

निकाली जाती है। बाकू विशाल तैल नगर है और वहाँ के तैल-ट्यूबों व पानी में डूबे या पृथ्वी में गड़े अन्य यन्त्रों को पुराना पड़ जाने पर बदलना आवश्यक है। समस्या इस पाँच लाख टन धातु के लाभप्रद उपयोग की थी। बाकू में ही जो यन्त्र निर्माण कारखाने हैं वे रद्दी कर के निकाली जाने वाली इस धातु के उपयोग के लिए पर्याप्त नहीं हैं। इसी प्रकार बाकू के तैल-शोधक कारखानों से काफी चीजें रद्दी के रूप में निकलती हैं, जिनका कोई उपयोग नहीं होता था और जो विनष्ट होती रही हैं।

तो सुमगईत नगर का निर्माण बाकू के सहायक या पूरक औद्योगिक नगर के रूप में हुआ। नगर के ही निकट एक लोहे की खदान भी है और वहाँ का लोहा भी सुमगईत के उपयोग के लिए उपलब्ध हुआ। फिर अजरबैजान प्रान्त अलूमिनियम धातु की खदानों में सनाढ्य है। कहते हैं कि चीन के बाद इस धातु के उपलब्ध होने में दूसरा स्थान संसार में अजरबैजान का ही है।

द्वितीय विश्वयुद्ध समाप्त होने के बाद ही इस ओर ध्यान दिया गया। आज सुमगईत साठ हजार की आबादी का आधुनिक नगर बन गया है। शहर की जनसंख्या पूर्णतः कारखानों के मजदूरों तथा अन्य कर्मचारियों की है। चौड़ी-चौड़ी सड़कों और ऊँचे-ऊँचे भवनों का यह साफ सुथरा नगर है, एक पूर्व आयोजित योजना के आधार पर बना हुआ। नगर में चार सांस्कृतिक भवन हैं, एक विशाल अस्पताल है, कई सुन्दर पार्क हैं और कई बाल संस्थाएँ हैं। और निर्माण-कार्य तेजी से जारी है। समुद्र के तट पर एक विशाल होटल और उद्यान बन रहा है। सुमगईत यात्रियों के लिए भी आकर्षक हो सकता है। और होटल बनाने का तात्पर्य यात्रियों को ठहरने की सुविधा प्रदान करना है।

नगर का प्रशासन एक चुनी हुई नगर-कमेटी के अधीन है। हम इस नगर-कमेटी के कार्यालय में गये और वहाँ नगर-कमेटी की कार्यकारिणी और उसके अध्यक्ष हुसेनोव से हमारी बड़ी देर तक बातें हुई। नगर-कमेटी के लिए प्रतिनिधि कारखानों के मजदूर व कर्मचारी, शहर के डाक्टर इत्यादि अन्य पेशेवर लोग, तथा शहर की हद पर बसे सामूहिक खेत के लोग चुनते हैं। चुनाव दो वर्ष में एक बार होता है। नगर कमेटी के प्रतिनिधियों की संख्या १६० है। यही प्रतिनिधि नगर के मेयर और ११ सदस्यों की कार्यकारिणी का चुनाव करते हैं।

नगर-कमेटी कई उपसमितियाँ विभिन्न कार्यों के लिए बना देती है। उदाहरणार्थ, एक निर्माण-समिति है जिसकी देख-रेख में सुमगईत की इमारतें बनती हैं। और चूंकि निर्माण कार्य में काफी कारखानों की इमारतें बनाना भी सम्मिलित है अतः नगर-कमेटी की उद्योग समिति इस सम्बन्ध में निर्माण-समिति से घनिष्ठ सहयोग द्वारा काम करती है। इसी प्रकार शिक्षा के लिए नगर-कमेटी की उपसमितियाँ हैं। इन सब समितियों के कार्यों का एकसूत्रीकरण और उनकी देख-रेख नगर-कमेटी की कार्यकारिणी और उसके अध्यक्ष मेयर हुसेनोव द्वारा होती है।

हम सुमगईत के कारखानों को देखने गए। हमने एक विशाल इस्पात कारखाना देखा। कारखाने के मुख्य फाटक पर बड़े-बड़े हरूफों में एक नारा लिखा था—'मीर पबिजित वायनू' अर्थात् "शान्ति युद्ध को पराजित कर देगी।' वस्तुतः यह नारा हमको कारखाने के अनेक और भागों में दिखाई पड़ा। तैल-नगर बाकू में भी एक तैल निकालने के केन्द्र के दरवाजे पर हमने यही नारा देखा था।

हमको वह विशाल इस्पात कारखाना दिखाया गया। प्रचंड औद्योगिक शक्ति का वह कारखाना प्रतीक है। हमको बताया गया कि इस कारखाने में बने तैल निकालने के लिए उपयोगी इस्पात के ट्यूब भारत काफ़ी संख्या में भेजे गये हैं। भिलाई के इस्पात कारखाने का सामान भी कुछ यहाँ से भारत गया है। और उसी कारखाने के कुछ विशेषज्ञ भी भिलाई इस्पात उद्योग को बैठाने में सहायता देने भारत गए हुए हैं।

यन्त्रों पर काबू कर मानव कितनी प्रबल शक्ति को अपने निर्देशन में लाता है, इसका वह सुमगईत का विशाल इस्पात कारखाना जीता-जागता सबूत है। हमारे देखते-देखते दो या तीन आदमियों की ऊँचाई के विराट् पीपे टघले लोहे से भरे गए, वहाँ से वह दहकता लोहा दूसरे विभाग में पहुँचा, जहाँ देखते-देखते वह लोहे की विशाल चौखटी बल्ली के रूप में कुछ ठंडा कर परिवर्तित कर दिया गया, और फिर कुछ अन्य प्रक्रियाओं द्वारा वह गोलाकार हुआ, उसमें छेद किया गया, और वह लोहे के ट्यूब की शकल को प्राप्त हो गया। दूसरे ही क्षण एक अन्य यन्त्र द्वारा उसका खुरदरापन दूर हुआ, वह चिकनाया गया। फिर एक अन्तिम प्रक्रिया द्वारा यन्त्रों ने ही जाँचा कि तैयार हुआ ट्यूब सब दृष्टियों से ठीक बना है या उसमें कुछ खराबी है। और अन्त में एक तरफ़ इन ट्यूबों के ढेर में वह पहुँचा दिया गया। यह पूरा काम लगभग पन्द्रह मिनट में समाप्त हो गया। पूरा कार्य यन्त्रीकृत था। मजदूरों का काम केवल भिन्न स्थानों पर लगे यन्त्रों के बटनों को उचित समय पर दबाना था। यह कार्य बहुधा स्त्रियाँ कर रही थीं। इसके लिए उच्च कोटि की यान्त्रिक शिक्षा आवश्यक है।

हमारे साथ पूरे कारखाने के मैनेजर थे और उस वर्कशाप का

अध्यक्ष एक लम्ब तड़ंग श्रमिक युवक था। अपने कार्य में वह पारं-गत है और उसने बताया कि चीन के उत्तरपूर्व (मंचूरिया) प्रदेश के सुप्रसिद्ध आनशान इस्पात कारखाने में वह तीन वर्ष काम कर अभी लौटा है। उसने बार-बार कहा कि यहाँ का बना सामान भारत भेजा गया है, और एक इण्डुस्की को अपना कारखाना दिखाने में उसकी प्रसन्नता और उसका उत्साह स्पष्ट था।

जिस विभाग में टघला लोहा विराट् पीपों में भरा जा रहा था, वहाँ भी दीवार पर बहुत बड़े रूसी हरूफ़ में "मीर पविजित वायनू" लिखा था। उस श्रमिक ने उस ओर हमारा ध्यान दिलाया और कहा कि हम जानते हैं कि हिन्दुस्तान और उसके नेता नेहरू विश्व-शान्ति के लिए कितनी कोशिश करते हैं। और उसने कहा कि जब कभी हमको हिन्दुस्तान को भेजे जाने वाले सामान का आर्डर पूरा करना होता है तो हम लोग बड़े उत्साह और सावधानी से काम करते हैं।

विशाल वह कारखाना था, प्रचंड शक्ति का प्रतीक, और जब हमने विराट् पीपे में टघला दहकता लोहा इस प्रकार उलटते जाते देखा मानो हम एक बाल्टी का पानी उड़ेलते हों तो हमने कहा कि सोवियत रूस की इसी विशाल शक्ति का पश्चिमी साम्राज्यवादियों को आदर करना पड़ता है, और इसी शक्ति से ही वे शान्ति वार्ता के लिए बाध्य होंगे। उसने कहा "मीर पबिजित वायनू" पर साथ ही यह वाक्य भी दोहराया—"हमारे शान्ति प्रयासों के बावजूद यदि साम्राज्यवादी हमारे देश पर आक्रमण करेंगे तो हम उनके मुँह में यही टघला लोहा भर देंगे।" उसने जब यह कहा तो उसके चेहरे पर दृढ़ता थी और फिर वह जोर से हँसा।

सुमगईत में और भी बड़े-बड़े कारखाने हैं। अलूमीनियम का

कारखाना है जहाँ चीन के तथा कुछ अन्य देशों के विद्यार्थी शिक्षा पा रहे हैं। फिर बाकू तैल-शोधक कारखानों से उपलब्ध रद्दी तथा कुछ अन्य अवयवों को लेकर वहाँ नकली रबर का एक कारखाना बनाया गया है और रासायनिक पदार्थों को तैयार करने का भी एक बृहद् कारखाना है।

और सुमगईत को बृहद् औद्योगिक केन्द्र बनाने की योजना पर बराबर काम हो रहा है। मेयर हुसेनोव का अनुमान था कि लगभग पाँच वर्ष बाद सुमगईत नगर की जनसंख्या वर्तमान साठ हज़ार से बढ़कर लगभग तीन लाख हो जाएगी। निर्माण-कार्य हमको शहर भर में सर्वत्र दिखाई पड़ा।

सुमगईत में ही हमको ज़ैनलोव नामक एक रूसी नागरिक मिले जिनकी याद नहीं भूलती। हम कास्पियन तट पर बनने वाले विराट् होटल व उद्यान को देखकर सड़क पर लौट रहे थे कि दूसरी तरफ़ से स्थूल शरीर के एक लम्ब तड़ंग महोदय आ रहे थे। उनको देखकर हमारे साथ के सब लोग चीख़ उठे। मज़ाक होने लगा, हंसी के फव्वारे छूटने लगे। स्पष्ट था कि जैनलोव सबों के प्रिय थे और स्वयं काफ़ी मज़ाकिया किस्म के थे। पता लगा कि वे हाल में ही रूस के यूराल क्षेत्र में स्थित संसार-प्रसिद्ध औद्योगिक केन्द्र चेलियाबिन्स्क से आए हैं और सुमगईत के इस्पात कारखाने में काम करते हैं। द्वितीय विश्वयुद्ध में जर्मन आक्रमणकारियों से लड़ते हुए वे तीन बार घायल हुए, और तीसरे घाव के अच्छे होने पर वे फिर युद्ध-मोर्चे पर जाकर लड़ने की ज़िद करने लगे पर अब वे इस लायक नहीं रह गए थे। ज़ैनलोव को बड़ा दुःख हुआ कि मातृभूमि की रक्षा के लिए वे कुछ नहीं कर पा रहे हैं और उनकी ज़िद और परेशानी समस्या हो गई। अन्त में उन्हें चेलियाबिन्स्क के इस्पात

कारखानों में काम करने को भेजा गया और तब यह उनकी समझ में आया कि कारखानों का काम भी मोर्चे पर लड़ने के काम के बराबर है। यहाँ उन्होंने बड़े उत्साह से काम किया, कई पदक प्राप्त किए, और दक्ष इस्पात मजदूर के रूप में वे प्रसिद्ध हुए।

ज़ैनलोव अड़े कि हम लोगों का दोपहर का भोजन उन्हीं के घर हो। उस दिन वे कारखाने से छुट्टी पर थे। दोपहर हो रही थी; पर उन्होंने कहा कि खाना वे मिनटों में तैयार कर देंगे और एक घंटे बाद जब हम उनके घर पहुँचे तो अजरबैजानियों के परम्परागत आतिथ्य-सत्कार क्रमों के अनुसार मेज़ खाने से, फलों से लदा था। और ज़ैनलोव की प्रसन्नता का पारावार न था। उन्होंने भारतीय फिल्में देखी हैं, नेहरू को उन्होंने अपने देश का "बोल्शोई द्रुग" यानी 'बहुत बड़ा मित्र' कहा, और महान् भारत के प्रति अपने स्नेह और आदर को अन्य कई प्रकार से व्यक्त किया।

सोशलिस्ट नगर सुमगईत केवल साठ हजार की जनसंख्या का शहर है, पर अपने अन्दर सोवियत संघ की महान् शक्ति की झलक संजोए हुए है। और सारे रूस देश में सोशलिस्ट नगर सुमगईत जैसे पच्चीसों नगर बन चुके हैं, बन रहे हैं।

१०८-वर्षीया माँ ज़रीफ़ा

सुमगईत के पास ही वोरोशिलोव कोलखोज (सामूहिक खेत) है, और वहाँ भी हम गए। इसके अध्यक्ष का नाम नारीमान है, हमको अपने बम्बई प्रान्त के दिवंगत नेता वीर नारीमान की याद आ गई। अजरबैजान ईरान से मिला हुआ प्रदेश है और बम्बई के पारसियों के ज़ोरोआस्त्र धर्मावलम्बी इसी क्षेत्र से भारत आकर बसे थे। कोलखोज अध्यक्ष नारीमान भी शकल सूरत में बिल्कुल भारतीय जैसे लगते हैं।

पहले हमको वोरोशिलोव कोलखोज के विषय में जानकारी कराई गई। सब आंकड़े नारीमान की जुबान पर थे—२,७०० हेक्टेयर का सामूहिक खेत है, ३०० हेक्टेयर पर तरबूज़ होता है, ३०० हेक्टेयर पर अंगूर हैं, ५०० हेक्टेयर पर गेहूँ होता है, ३०० हेक्टेयर पर मक्का बोया जाता है, २५० हेक्टेयर पर टमाटर, पात गोभी, प्याज़ इत्यादि सब्ज़ियाँ होती हैं। सामूहिक खेत में १६० घराने है, खेत पर काम करने वाले वयस्कों की संख्या ६०० है, खेत के पास ६४० गाय-बैल हैं, १३,००० भेड़ें हैं, इत्यादि-इत्यादि।

नारीमान हमको जचे। रूस में हमको कई कोलखोज अध्यक्षों से मिलने का अवसर मिला और नारीमान सबों से अधिक जचे, बहुत योग्य प्रतीत हुए। प्रारंभिक जानकारी के बाद हम कोलखोज घूमने निकले, हमने उसका स्कूल देखा, पशुपालन-केन्द्र देखा, घरों के अन्दर जा कर घर देखे, और तब नारीमान का प्रबल आग्रह हुआ कि हम उनके घर चलें।

यहीं हमको १०८ वर्षीया माँ ज़रीफ़ा मिलीं। नारीमान के घर

पहुँचने के पूर्व हमको यह पता न था कि उनकी माँ अभी जीवित हैं। नारीमान के मकान के आगे ऊँचा-सा चबूतरा था, उसी पर दरी बिछी थी और ज़रीफ़ा वहाँ बैठी थीं। नारीमान ने परिचय कराया और माँ ने खुशी-खुशी हमारा स्वागत किया, दरी पर बैठने को कहा। नारीमान का आग्रह था कि हमारा दल पहले कुछ नाश्ता करे, पर हमारी ज़िद रही कि पहले हम माँ से बातें करेंगे।

ज़रीफ़ा १०८ वर्ष की हैं, यह विश्वास किया जा सकता है। नारीमान उनका सबसे छोटा लड़का है और उसकी उम्र ५६ वर्ष की है। उनके सबसे बड़े जीवित पुत्र की अवस्था ८० वर्ष की है। वह उसी वोरोशिलोव कोलखोज में है, और लगभग रोज ही अपनी माँ से मिलने अपने छोटे भाई नारीमान के घर आता है। जरीफ़ा नारीमान के ही साथ रहती हैं।

जरीफ़ा के दाँत मौजूद हैं और वह अच्छी तरह सुन सकती हैं। उन्होंने बताया कि उनकी माँ १२५ वर्ष तक जीवित रहीं। ज़रीफ़ा को यह याद नहीं कि उनकी शादी जब हुई तो उनकी क्या अवस्था थी, पर विवाह बाल्यावस्था में ही हो गया था। विवाह का तरीका जरीफ़ा ने बताया। दस या बारह वर्ष की बालिका खड़ी कर दी जाती थी और तब कोई बड़ा पुरुष उसके ऊपर एक बहुत भारी सी खास किस्म की अजरबेजानी टोपी फेंकता था। अगर उसके फल-स्वरूप बालिका गिर पड़ती थी तो इसके माने उसकी शादी नहीं होगी। और चोट को बर्दाश्त कर जो बालिका फिर भी खड़ी रहती थी, उसका विवाह हो जाता था।

ज़रीफ़ा ने बताया कि उनको कुल १४ बच्चे हुए जिनमें से आठ अभी भी जीवित हैं। एक बार उनको जुड़वाँ सन्तान हुई और एक बार एक साथ तीन बच्चे हुए। इस पर बड़ा तूफ़ान खड़ा हो गया

गांव में, और मुल्ला ने साफ़ कह दिया कि यह तो शैतान पैदा हुए हैं ! और मुल्ला के ही आदेश पर ज़रीफ़ा के पति ने इन "शैतान" बच्चों को बर्फ़ में फेंक दिया, जहाँ वे मर गए ।

उनके पति के पास भूमि नहीं थी और मजदूरी कर वह निर्वाह करते थे । एक बार ज़रीफ़ा के पति ने १०० रूबल उधार लिया पर अदा न कर पाए, जिसके एवज़ में उन्हें महाजन के यहाँ पाँच साल काम करना पड़ा । ज़रीफ़ा के बच्चे भी बड़े होने पर मजदूरी करने लगे थे । हमने सवाल किया कि क्या उनका पति उनको कभी पीटता पाटता था । ज़रीफ़ा ने ज़ोरों से इससे इन्कार किया । उन्होंने कहा—"मेरे घर में इस तरह की बात कभी नहीं होती । मेरे बेटे भी कभी अपनी बीवियों को नहीं पीटते ।" हाँ, ज़रीफ़ा ने बताया कि बाद में उनके पति ने एक और शादी कर ली थी । दूसरी बीवी के पास एक मकान था और कुछ धन भी था । ज़रीफ़ा ने साफ कहा—"हम लोग बहुत गरीब थे, और इस दूसरे विवाह का तात्पर्य कुछ धन पा जाना था ताकि हमारे घर की गुरबत कुछ कम हो ।"

हमने ज़रीफ़ा से पूछा कि जब उनकी शादी हुई थी उस समय रूस पर किस ज़ार का शासन था, क्या उनको याद है ? उन्होंने कहा कि यह तो उन्हें नहीं पता, पर शुरू से ही उनको याद है उनके लड़के बेगार के लिए ले जाए जाते थे और गाँव का मुखिया उनको पीटा करता था ।

हमारा अगला सवाल था कि १९१७ की महान् रूसी क्रान्ति की उनको क्या याद है ? उन्होंने सिर्फ यही बताया कि उनके गांव में जो 'बे' (अर्थात् गांव का धनाढ्य भूपति) था वह अपने महल से निकाल बाहर कर दिया गया था और भूमि किसानों में बाँट दी

गई थी। उनके घराने को भी भूमि मिली थी। उनके पति की मृत्यु क्रान्ति के दस वर्ष बाद हुई थी।

हमारा अगला प्रश्न था कि क्रान्ति के पहले वह खुश थीं या अब ? वह हँसीं, उन्होंने कहा, तब से अब में बड़ा फर्क है। "क्रान्ति के पहले गाँव के समृद्ध लोग मेरे बेटों को बहुत पीटा करते थे। हमारे पास कोई जमीन खेती के वास्ते नहीं थी। मेरे बच्चे इधर-उधर मेहनत-मजदूरी करने जाया करते थे। पानी की बहुत कमी रहा करती थी। अब ऐसा कुछ नहीं है। अब मैं बहुत खुश हूँ।"

हमने ज़रीफ़ा से कहा कि रूसी क्रान्ति के बारे में कुछ और बतावें। और तब उस वात्सल्यमयी ने जो कुछ कहा उससे उस का माँ रूप ही व्यक्त हुआ। उनका रूसी क्रान्ति के बारे में केवल एक ही कथन था—"हमारा रहबर लेनिन था।" और लेनिन को 'रहबर' ज़रीफ़ा ने कैसे जाना ? ज़रीफ़ा ने बताया कि क्रान्ति के बाद कुछ लोगों ने मेरे बेटे नारीमान को बदनाम किया और वह जेल में बन्द कर दिया गया। ज़रीफ़ा जेल में नारीमान से भेंट करने गईं। उसी दिन जेल में रूसी क्रान्ति के सम्बन्ध में कोई समारोह था और क्रान्ति के नेताओं के चित्र वहाँ लगे थे। ज़रीफ़ा के किसी रिश्तेदार ने उन्हें लेनिन का एक चित्र दिया। लेनिन का चित्र लेकर ज़रीफ़ा घर आईं और उस चित्र के आगे खूब रोईं और उस चित्र से कहा कि मेरे बेटे को जेल से छुड़वा दो। और ज़रीफ़ा ने कहा—"मेरा बेटा नारीमान दूसरे ही दिन जेल से छूट कर मेरे पास आ गया। मुझे बहुत खुशी हुई। मैंने समझा कि लेनिन ने मेरी आवाज़ सुन ली। लेनिन ही हमारा रहबर है।" जहाँ तक स्मरण है, नारीमान ने हमको बताया था कि इस घटना के समय लेनिन का देहान्त हो चुका था।

इसी प्रकार ज़रीफ़ा से बड़ी देर तक बातें चलती रहीं। उनका बड़ा चौड़ा सा चेहरा है, झुर्रियाँ हैं, पर मुख पर ललाई है और स्वास्थ्य का चिन्ह है, वे भी अपनी माँ की १२५ वर्ष की अवस्था प्राप्त कर लें तो आश्चर्य नहीं। काफ़ी भारी उनका शरीर है, लम्बी डील-डौल है। और कोहकाफ़ (काकेशस) पर्वतों की उन निचली तलहटियों में उन जैसी वृद्धाएँ और वृद्ध पाए जाते हैं। ज़रीफ़ा एक लम्बा चित्तीदार नीला कुर्ता पहने थीं, काफी नीचा और ढीली बाहों का। लहंगा काले कपड़े का था। सर पर गाढ़े हरे रंग का वस्त्र लिपटा था। एक लाल रंग का बड़ा सा रेशमी रूमाल बराबर उनके हाथ में था, और कितनी देर, लगभग दो घण्टे, हमारी उनसे बातें हुईं, वे अपना मुँह उससे ढंके रहीं। उनका पूरा कुनबा चबूतरे पर बैठा और खड़ा था; डेढ़-दो दर्जन छोटे-छोटे बच्चे और युवक युवतियाँ, कोई पोते, कोई परपोते, कोई पुत्रवधू। चबूतरे के पीछे के कमरे से नारीमान की स्त्री और एक वृद्धा नारीमान की भावज खिड़की से झाँक रहीं थीं।

ज़रीफ़ा सवालों का जवाब सोचती थीं। कभी सवाल सुनकर हँस देती थीं। जब मैंने पूछा कि क्या उनका पति उनको पीटता था, और जब उसका उनकी भाषा में अनुवाद हुआ तो वे ठहाका मारकर हँसीं और सब कुनबा भी जोर से हँसा। ज़रीफ़ा संतोष और सुख की प्रतिमूर्ति लगती थीं। मैंने कहा भी कि तुम्हारे जैसा भाग्यवान कौन दुनियाँ में होगा, सब पोते, परपोते प्रसन्न खेल-कूद रहे हैं, घर में खाने, पहनने की दिक्कत नहीं, सब तुम्हारी टहल सेवा में रहते हैं, अब तुमको चाहिए क्या ?

वह खुश हुई। उन्होंने कहा—"हमारी जिन्दगी अब सुखी है। सब लड़के बच्चे मेरा बड़ा ख़याल रखते हैं।" उन्होंने बताया कि

उनके उस घर में कुल तीस प्राणी हैं। सब से ताजा आगन्तुक नारीमान की भतीजी का एक वर्ष का बालक है।

हमने छेड़कर कहा—"यह सब बड़ी-बड़ी लड़कियाँ बिना पर्दे के घूमती हैं, क्या तुमको बुरा नहीं लगता ?"

इस पर ज़रीफ़ा हँसीं। सब खड़े-बैठे कुनबे वाले भी हँसे। जब हँसी रुकी तो ज़रीफ़ा ने कहा—"मैं पर्दा नहीं चाहती। पर्दा नहीं है तो अच्छा है।"

हमने पूछा, अब तुम क्या चाहती हो ? वृद्धा ने कहा—"मैं बीमार रहा करती हूँ। मैं स्वस्थ रहना चाहती हूँ। मेरे चारों तरफ छोटे-छोटे बच्चे हैं।" ज़रीफ़ा ने नारीमान की १७ वर्ष की पुत्री की ओर इशारा करते हुए कहा—"मैं इसकी शादी देखना चाहती हूँ। मुझे जिंदगी में सबसे अधिक प्रसन्नता तब-तब हुई जब-जब हमने अपने लड़कों और लड़कियों का विवाह किया।"

पालथी मारे बैठी ज़रीफ़ा ने एक बार आसन न बदला और ऐसा लगा मानो वह वैसे ही वहाँ बराबर बैठी रह सकती हैं। सवालों को सुन कभी वह देर तक चुप रहतीं। फिर कभी बोलने लगतीं तो आठ-आठ, दस-दस मिनट तक बोलती ही जातीं। और बोलने में भाव भंगी आती, हाथ हिलता, उतार-चढ़ाव आता।

हमने ज़रीफ़ा से कहा—"तुम इतनी स्वस्थ, लाल-लाल लगती हो, क्यों तुम बस इस सत्रह वर्ष की लड़की की शादी तक जीना चाहती हो, क्यों न नारीमान की भतीजी के एक वर्ष के बालक के विवाह तक का विचार रक्खो, आखिर पन्द्रह-बीस साल की ही देर है।"

ज़रीफ़ा गद्गद् हो गईं, बड़ी खुश हुईं, हँसीं, फिर हँसी रोकने की कोशिश की और फिर फूट कर हँसीं। उनकी प्रसन्नता देखते

बनती थी। और आख़िर में कहा—"मैं जरूर इस लड़के के विवाह तक ज़िन्दा रहना चाहती हूँ।"

और अब उन्होंने हम लोगों को इशारा किया कि अन्दर जाकर हम लोग जलपान करें। पर हमने एक आख़िरी सवाल कर दिया। हमने पूछा—"तुम अपनी आठ जिन्दा सन्तानों में नारीमान के ही पास रहना क्यों पसन्द करती हो ?"

ज़रीफ़ा ने जवाब दिया—"मामादोव नारीमान अब्दुल्ला ओग्ली (उनके पुत्र नारीमान का पूरा नाम—ले०) जब छः महीने का था तब ही इसके पिता ने दूसरी शादी की थी। यह मेरा सबसे छोटा, सबसे योग्य बेटा है, और इसे मैं अपनी सब सन्तानों से अधिक प्यार करती हूँ। मैं सदा इसी के साथ रही हूँ।"

नारीमान पर ज़रीफ़ा को गर्व करना स्वाभाविक है, पर निश्चय है कि वे पूरी तरह से न समझ पाती होंगी कि उनका पुत्र कितना निराला और अद्भुत व सर्वत्र आदरणीय पुरुष है। सन् १६२६ में नारीमान कम्यूनिस्ट पार्टी के सदस्य हुए थे। अपने सामूहिक खेत में उत्पादन की आश्चर्यजनक वृद्धि दिखलाकर वे सन् १६४३ में रूस के सबसे बड़े सम्मान-चिन्ह "आर्डर आफ लेनिन" से विभूषित हुए। फिर युद्ध के बाद के वर्षों में फ़ौज में भर्ती होने पर उन्होंने जो शौर्य प्रदर्शित किया उसके लिए उनको पदक प्राप्त हुआ। एक और कार्य में उन्होंने विशेषता प्राप्त की। जर्मन आक्रमणकारियों की अग्रिम पंक्ति के पीछे रूसी गुरिल्ला दस्तों को रसद पहुँचाने का असम्भव कार्य उन्होंने सम्भव किया। इसके लिए भी उनको पदक प्राप्त हुआ।

१०८ वर्षीया वृद्धा से बातें करने का इस प्रकार हमको अवसर प्राप्त हुआ। उनको दुनियावी हलचलों की चिन्ता नहीं, उनकी

जानकारी नहीं, न ही उनको अन्तर्राष्ट्रीय तनातनी और ठंडी लड़ाई का पता है, या जानकारी है, वह तो माँओं की माँ वात्सल्य के जगत् में डूबती-उतराती अपनी जीवन-नैया को आखिरी मंजिलों में खे रही है। और वह जानती है कि जो नयी दुनिया उसके चारों ओर बन गई है, वह उसके बेटों ने बनाई है।

सोची-कीव

अजरबैजान के बाद हमको रूस के उर्वर प्रदेश यूक्रेन की राजधानी कीव जाना था, लगभग १,१०० मील का फासला। बाकू से हम ढाई बजे रात उड़े और सुबह सात के लगभग हम काले सागर के तट पर स्थित हवाई अड्डे एडलर पहुँचे। एडलर से कीव के लिए हवाई जहाज मिलने में कई घंटे की देरी थी। एडलर हवाई अड्डे से लगभग तीस मील की दूरी पर सोवियत संघ का संसार-प्रसिद्ध स्वास्थ्य-केन्द्र सोची है। पूर्व प्रबन्ध के अनुसार सोची नगर सोवियत के एक उच्च पदाधिकारी एडलर हवाई अड्डे पर एक मोटर लेकर आ गये थे और उन्हीं के साथ हमने उन चन्द फालतू घंटों का उपयोग इस प्रसिद्ध नगर को देखने के लिए किया।

एडलर से सोची का मार्ग पहाड़ों पर ही बना है। कास्पियन सागर और काले सागर के बीच की लगभग पाँच-छः सौ मील चौड़ी भूमि की पट्टी में एक पार से दूसरे पार तक कोहकाफ पर्वत-मालाएँ व्याप्त हैं। सोची भी इसी पहाड़ी शृंखला पर काले सागर के तट पर बसा हुआ है। क्रान्ति-पूर्व रूस में भी यह रमणीक स्थल स्वास्थ्य केन्द्र के रूप में प्रसिद्ध था और बड़े-बड़े रूसी ड्यूकों व प्रिन्सों ने वहाँ आवास के लिए विशाल महल बनवाए थे।

एडलर से सोची के उस पहाड़ी रास्ते का सौन्दर्य यात्री को मंत्रमुग्ध कर लेता है। सघन वृक्षों से लदे पहाड़ों के बीच गुजरती उस मुड़ती-चुड़ती सड़क पर दृश्य बराबर बदलता रहता है, और काफी मोटरें व यात्री-बसें आती-जाती रहती हैं। केरल प्रदेश में यात्रा करते या गोहाटी से शिलाँग जाते समय काफी देर तक आपकी

मोटर को बड़े सघन पर्वतों के बीच से गुजरना पड़ता है, और एडलर-सोची मार्ग में हमको अपने भारत देश की इन यात्राओं की याद आ गई। मार्ग में जगह-जगह यात्रियों के बैठने के लिए स्थान बने हैं और कई स्थानों पर स्टालिन की भव्य मूर्ति दिखी। स्टालिन को सोची बहुत पसन्द था और बहुधा वह यहाँ स्वास्थ्य-लाभ के लिए आते थे।

सोची नगर साफ-सुथरा है और एक योजना के अनुसार बना है। हमको बताया गया कि सोची को सोवियत नागरिकों का विशाल स्वास्थ्य-लाभ-केन्द्र बनाने का निर्णय स्टालिन की इच्छा के अनुसार हुआ और इसी उद्देश्य से सोची को और बड़ा बनाने की योजना में भी स्टालिन का हाथ था।

सोची नगर की सड़कों पर हमको बड़ी चहल-पहल, बड़ा जीवन दिखा। छुट्टी मनाने के लिए आने वालों की ही उस नगर में बहुतायत होती है, और छुट्टी की मुद्रा में ही झुण्ड के झुण्ड रूसी स्त्री-पुरुष सड़कों पर घूम रहे थे। स्मरण रहे कि सोवियत संविधान में प्रत्येक नागरिक को छुट्टी और आराम पाने का मौलिक अधिकार प्राप्त है। प्रत्येक सोवियत नागरिक को इसी छुट्टी और आराम के लिए वेतन-सहित छुट्टी मिलती है। दो सप्ताह की ऐसी सवेतन छुट्टी अनिवार्य है। और बहुधा यह तीन सप्ताह या एक मास के लिए बढ़ा दी जाती है। खदानों, लोहे और इस्पात कारखानों, सूती मिलों, रेलवे इत्यादि के मजदूरों को एक मास की छुट्टी सवेतन मिलती है। अध्यापकों तथा वैज्ञानिकों तथा अन्य विद्वानों को दो मास की सवेतन छुट्टी मिलती है।

सोची तथा ऐसे ही अन्य स्वास्थ्य-केन्द्रों में प्रत्येक वर्ष लाखों लाख सोवियत नागरिक छुट्टियाँ बिताते हैं। सोची में दर्जनों भव्य

विशाल भवन हैं जिनमें यह छुट्टी मनाने वाले आकर रहते हैं। कोयला खदान मज़दूरों, धातु कारखानों, सूती मिलों, इस्पात कारखानों के कर्मचारियों तथा ऐसे ही अन्य अनेक श्रेणी के मज़दूरों के आवास के लिए बने हुए बड़े-बड़े भवन हमने सोची में देखे। फिर रूस के प्रसिद्ध नेताओं के नाम पर वहाँ ऐसे स्वास्थ्य-गृह हैं। किरोव के नाम पर बना किरोव सेनेटोरियम विशेषत: लेनिनग्राड के मज़दूरों के लिए है, कारण किरोव का मुख्य कार्यक्षेत्र वही ऐतिहासिक नगर था। एक मैक्सिम गोर्की सैनेटोरियम लेखकों व अन्य साँस्कृतिक क्रियाकलाप वालों के लिए है। इसी प्रकार लेनिन, स्टालिन, ओर्डोनकिड्ज़े, ड्ज़िरन्स्की, इत्यादि इत्यादि दिवंगत नेताओं के नाम पर विशाल सैनेटोरियम हैं।

इन सैनेटोरियमों में हमने मज़दूरों को बहुधा सपरिवार देखा। पता लगा कि इन विशाल आवासों की देख-रेख और प्रबन्ध राजकीय समाज-सुरक्षा कोष द्वारा किया जाता है। मज़दूरों से उनके निवास-व्यय का केवल तीस प्रतिशत लिया जाता है और काफी लोगों से कुछ भी नहीं लिया जाता। मज़दूरों के बच्चों का व्यय राज्य की ओर से दिया जाता है।

सोची नगर के तीन तरफ़ समुद्र और अधिकाँश सैनेटोरियम समुद्र-तट पर ही हैं। समुद्र के किनारे सैकड़ों सोवियत नर-नारी धूप ले रहे थे। सोची नगर सोवियत का जो अधिकारी हमारे साथ था, उसने जोर दिया कि हम लोगों को भी काले सागर में अवश्य स्नान करना चाहिए। पिछली दोपहर को ही हमको कास्पियन सागर में स्नान करने का अवसर प्राप्त हुआ था, और चौबीस घंटे के अन्दर ही दूसरे सागर में स्नान करने का अवसर हम भला कैसे छोड़ सकते थे। और हम काले सागर में उतरे। कास्पियन सागर

में किनारे से बीस पचीस कदम तक हमको पानी छाती तक ही मिला पर काले सागर में किनारे से चार पाँच कदम बाद ही अथाह गहराई आ गई। और किनारे से करीब पचास कदम की दूरी पर समुद्र में एक खतरे का चिन्ह खड़ा था कि कोई भी सागर स्नान करने वाला और तैराक उस चिन्ह के आगे न बढे।

काले सागर के उस तट से हमने दूर पर देखा कई जहाज जा रहे थे। हम जहाँ थे वहाँ से काले सागर को भूमध्य सागर से मिलाने वाला दर्रा दानियाल लगभग आठ सौ मील पर था और रूसियों ने बताया कि जहाज उसी ओर जा रहे थे। काले सागर का पानी बहुत नीला था, पर काला कदापि नहीं, और हमको अपने स्कूल और कालेज के दिनों की याद आई जब अंग्रेजियत में डूबे हम अपने काले भारतीय भाइयों को चिढ़ाते थे कि बेचारे हैं इंगलिस्तान के पर हिन्दुस्तान आते वक्त काले सागर में गिर पड़ने से काले हो गए।

हमको कीव का हवाई जहाज पकड़ना था और मन न होते हुए भी हमको सोची छोड़ना पड़ा। दिन चढ़ चुका था और सोची की सड़कों पर छुट्टी मनाने वाले सैकड़ों सोवियत नर-नारी हँसते, बेफिक्र घूम रहे थे। रूस देश मजदूरों का है, यह हम साक्षात् आमने-सामने देख रहे थे।

सोची से एडलर के रास्ते में सोची नगर सोवियत के अधिकारी ने हिन्दुस्तान के बारे में बड़े सवाल किये। एक सवाल यह था कि हिन्दुस्तानी स्त्रियाँ माथे पर बिन्दियाँ क्यों लगाती हैं? हमने जब कहा कि यह स्त्रियों के सौभाग्य का चिन्ह है और इसका अर्थ समझाया तो उन्हें बड़ा मजा आया। पैंतालीस की उनकी अवस्था है, उनके एक लड़की सत्रह वर्ष की है और एक लड़का ग्यारह

वर्ष का। और उन्होंने भी बारहा दोहराया कि इण्डुस्की बड़ा अच्छा होता है। हिन्दुस्तानी फिल्में उन्होंने देखी हैं, उनको काफी पसन्द आईं।

एडलर से उड़ने पर हमको वायुयान से काफी देर तक एक तरफ काला सागर और दूसरी तरफ कोहकाफ पर्वत-माला दिखाई पड़ी और फिर काला सागर ओझल हो गया और नीचे हरी-हरी पहाड़ियाँ दिखाई पड़ीं। बड़ी देर तक उतरते-चढ़ते हरे-हरे पर्वत ही दिखे, और उनके बीच-बीच में हरे-हरे खेत भी दिखाई पड़ते थे। लगभग एक घण्टे बाद हम स्टालिनों नामक हवाई अड्डे पर उतरे। इस नगर पर हिटलरी फौजों ने कब्जा किया था और यहाँ रूसियों ने जर्मन आक्रमणकारियों से जबरदस्त मोर्चा लिया था। स्टालिनों के बाद पहाड़ी शृंखलाएँ कम होने लगीं और उर्वर यूक्रेन प्रान्त का सपाट मैदान दिखाई पड़ा। लगभग दो घण्टे की उड़ान के बाद हम यूक्रेन की राजधानी कीव पहुँचे।

कीव ऐतिहासिक नगर है, और रूस के प्राचीन शहरों में एक है। महत्त्व की दृष्टि से मास्को और लेनिनग्राड के बाद इसका तीसरा नम्बर है। बड़े उपजाऊ यूक्रेन प्रान्त का केन्द्र-स्थल होने के साथ ही यह बड़ा औद्योगिक केन्द्र भी है। कीव नगर ने हिटलरी सेनाओं से बहुत घनघोर युद्ध किया था, पर बाद में रूसी फौजों को हटना पड़ा। पीछे हटते समय रूसी वहाँ के युद्ध-सामग्री उत्पादन करने वाले कारखानों को अपने साथ लेते गए। युद्ध में तो कीव ध्वस्त हुआ ही, फिर जब हिटलरी फौजें रूसी प्रत्याक्रमण के बाद पीछे हटीं तो उन्होंने इस प्राचीन नगर को ध्वस्त कर दिया। इस प्रकार युद्धकाल में कीव शहर अस्सी प्रतिशत ध्वस्त हो गया था।

इस ध्वस्त नगर को पुनः बसाना कठिन कार्य था। पर यह

कार्य आज से कई वर्ष पहले ही पूरा हो गया और आज कीव में युद्धकाल के विनाश का चिन्ह नहीं दिखाई पड़ता। लगभग सब ही सरकारी इमारतें व अन्य भवन पुनः बन गए हैं। वस्तुतः कीव शहर को अपनी एक शान मालूम पड़ती है, शहर की सज-धज, रोशनी-बत्ती और विशाल अट्टालिकाओं से बम्बई की याद आ जाती है। मार्के की बात यह है कि ध्वस्त शहर को फिर बसाते वक्त वृक्षों को लगाने की ओर और जगह-जगह पार्क बनाने की ओर विशेष ध्यान दिया गया है। और आज कीव नगर सर्वसम्मति से संसार के सर्वश्रेष्ठ उद्यान-नगरों में एक है। कीव में आप जहाँ भी जायें, आपको बहुत वृक्ष और हरियाली दिखाई पड़ती है और रह-रह कर यही भासित होता है मानो हम किसी उद्यान में घूम रहे हों।

कीव प्राचीन नगर है और किसी समय यह महत्त्वपूर्ण धर्म-केन्द्र था। इसके हमने दो नमूने देखे। हम एक बड़ा प्राचीन गिरजाघर देखने गये जो १०३६ ई० में बना था। रूसी भवन-निर्माण कला पर मध्य एशिया का और बाइजैन्टियम भवन-कला का गहरा प्रभाव पड़ा है, और उपर्युक्त गिरजाघर इसका प्रतीक है। अपने लम्बे जीवन-काल में युद्धों के कारण यह गिरजाघर कई बार बिगड़ा और बना, पर विचित्र बात यह है कि उसका भव्य केन्द्रीय गुम्बद जैसा का तैसा कायम है। बहुत विशाल यह गुम्बद है और इस पर एक किसी यीशु धर्म की देवी का चित्र है। चित्र नीचे से देखने पर अभी भी पुरानी चमक को लिये हुए मालूम पड़ता है। चित्र के सुनहले हिस्से सोने के हैं। फिर गिरजाघर की दीवारों पर चित्रकारी है और हाल में ही पता लगा है कि ऊपरी चित्र के नीचे चित्रों की तीन सतहें हैं। स्पष्ट लगा

कि एक पर दूसरे चित्र बनाए गए। गिरजाघर अब जर्जर हो गया है अतः सोवियत सरकार ने उसका धर्म-स्थान के तौर पर व्यवहार बन्द कर उसे राज्य द्वारा सुरक्षित कला स्मारक के रूप में अपने हाथ में ले लिया है। और सोवियत सरकार ने उसी गिरजे के निकट एक विशाल एवं भव्य गिरजाघर बनवा दिया है।

हम इस गिरजे को भी देखने गए। धार्मिक यूक्रनी स्त्री-पुरुष काफी संख्या में वहाँ दिखाई पड़े। साफ है कि सोवियत रूस में यदि कोई धर्मावलम्बी है और गिरजा इत्यादि जाना चाहता है तो उसको इसकी पूरी स्वतन्त्रता है। और इस गिरजे में हमको वृद्ध और वृद्धाएँ दिखी हीं, साथ में हमने अनेकानेक युवक और युवतियों को भी वहाँ देखा। वे सब भगवान् के भक्त थे, गिरजे में लगे चित्रों और मूर्तियों के आगे जिस प्रकार वे झुकते थे और वन्दना करते थे, उससे यह स्पष्ट था। और गिरजे में काफी अगरबत्तियाँ जल रही थीं, और फूलों की महक भी व्याप्त थी, हमको अपने भारतीय देवस्थानों की चिरपरिचित सुगन्ध की याद आ गई।

कीव की प्राचीनता का और उसके धार्मिक महत्त्व का एक अद्भुत और विचित्र प्रतीक भी हमने देखा। कीव शहर के एक कोने पर पहाड़ियों के बीच कई मील लम्बी गुफ़ाएँ हैं। एक पर्वत को काट कर वह गुफाएँ बनाई गई। दो आदमी बराबर बराबर साथ चल सकें ऐसा लगभग तीन-चार मील लम्बा गलियारा समझिए। तारीफ़ यह है कि इसमें घूमने पर कभी भी घुटन नहीं होती, और हल्की-हल्की हवा लगती है। यह गुफाएँ ९०० वर्ष पुरानी हैं।

और इस विचित्र गुफा-गलियारे में हमने क्या देखा? अस्सी व्यक्तियों की लाशें। वह सब जीवन-रहित मानवीय कंचन काया

तत्कालीन महान् गिरजाधीशों और ईसाई सन्तों की थीं। धार्मिक दृष्टि से, और जिज्ञासा की दृष्टि से भी उन गुफाओं को देखने जाने वालों का ताँता लगा रहता है। काला-काला चोगा पहने टिपिकल रूसी पादरी हर एक को एक मोमबती देते हैं, उसे पकड़ने का ढंग बताते हैं। इस प्रकार जलती मोमबत्ती को लिये चलने वाले पैंतीस या चालीस व्यक्तियों की एक लाइन का जलूस बनता है। बीच-बीच में पादरी रूप के ही गाइड रहते हैं जो प्रत्येक संत शरीर के सन्मुख खड़े होकर उसके विषय में परिचय देते हैं।

वस्तुत: इसी काल में ही मृत संतों और बड़े गिरजाधीशों के शरीर को एक विशिष्ट लेपन द्वारा स्थापित रखने की प्रथा रोम में भी थी। और वहाँ भी इस किस्म की गुफाएँ पाई जाती हैं। गुफा के अन्दर हमने सब शरीरों को सर्वश्रेष्ठ आभूषण युक्त पादरी-पोशाकों में पाया, और उनके सिरों पर भी ताज विराजमान था। शीशे के सन्दूकों में वे बन्द लेटे थे, हल्की सी रोशनी में उनका चेहरा और दोनों हाथ दीखते थे—बिल्कुल स्याह। कुछ की आँखें खुली थीं, कुछ की बन्द थीं। हर एक का चित्र टंगा था। एक बड़ी-सी कोठरी में, जंगले के पीछे हमने देखा कि बारह लाशें बगल-बगल पड़ी थीं। पता लगा कि बारहों भाई थे।

मुर्दों की इस दुनिया का दिमाग पर अजब असर रहा। बाहर के जीवित जगत् से वह दुनिया कितनी दूर, कितनी अलग लगी। फिर इस प्रकार एक नष्ट काया को संवार कर स्थापित रखने का भी अर्थ समझ में न आया। यह मानवीय काया कितनी अक्षुण्ण है, यह तो स्पष्ट ही था। और मुर्दों की वह दुनिया बड़ी खराब लगी। हमारे साथ हमारी भाषान्तरकार महिला ने चलने से इन्कार किया, क्षमा माँगी, कहा—"एक बार हो आना ही काफी है,

दोबारा जाना गलत है।" शायद ही कोई वहाँ दोबाराजा ना पसन्द करे।

कीव की आबादी दस लाख से कुछ ऊपर है। रूस की प्रसिद्ध नीपर नदी के तट पर कीव बसा है। नीपर नदी का बाँध संसार-प्रसिद्ध है। नीपर और इसी के निकट बहने वाली डान नदी के साथ रूस देश की जनता का इतिहास जुड़ा है। वह उपन्यासों का केन्द्र है और कवियों की कविताओं का विषय। कीव शहर में नीपर बड़ी शान्त और गम्भीर बह रही थी। और नीपर के किनारे ही कीव वालों ने एक स्थान पर एक सुन्दर स्मारक पार्क बनवाया है। पार्क में, फूलों के बीच उन वीरों के स्मारक पत्थर थे, जिनके नेतृत्व में कीव की जनता ने हिटलरी फौजों का मुकाबला किया था।

कीव यूक्रेनियों की राजधानी है। यूक्रेनी रूसी से सोलहों आने मिलते हैं, भाषा में कुछ अन्तर है और कुछ कलात्मक विशेषताएँ उनकी हैं। वैसे वे बड़े मस्त किस्म के, भारी भरकम शरीर के लोग होते हैं, जैसे हमारे पंजाब प्रान्त के लम्बे चौड़े लोग। जिस प्रकार पंजाब अपनी उर्वर भूमि के लिए प्रसिद्ध है और वहाँ गेहूँ की बड़ी पैदावार होती है, वही हाल रूस में यूक्रेन का है। यूक्रेनी अपनी मस्ती और अपने हास्य के लिए तथा अपनी सरलता के लिए प्रसिद्ध हैं। कीव में हमने इन प्रसन्न हृष्ट-पुष्ट मानवों के झुंड के झुंड देखे। वे बड़े भले लगे। कीव वालों को अपने शहर पर बड़ा गर्व है। वस्तुतः कीव वासी मास्को या लेनिनग्राड निवासी की तरह अपनी कुछ विशेषता और कुछ निरालापन रखता है।

यूक्रेनी कृषि

संसार में यूक्रेन सोवियत-संघ के खाद्य-भण्डार के रूप में प्रसिद्ध है। वहां की कृषि, वहाँ के सामूहिक खेत सारे रूस के लिए उदाहरण हैं। स्वभावतः हमने यूक्रेन की कृषि की ओर विशेष ध्यान दिया। अपने अध्ययन में हमको यूक्रेन सरकार के कृषि-मंत्रालय से और वहाँ की कृषि विद्वत्-परिषद् से सुन्दर सहयोग प्राप्त हुआ।

जलवायु की दृष्टि से यूक्रेन प्रान्त चार प्राकृतिक विभागों में विभक्त हो सकता है। काले सागर के ऊपर का दक्षिणी क्षेत्र, जहाँ की भूमि बड़ी उपजाऊ है पर जहाँ पानी कम बरसता है, जिस कमी को व्यापक सिंचाई सुविधाओं द्वारा दूर करने का प्रयास बराबर हो रहा है। फिर मध्य क्षेत्र है जहाँ मुख्यतः जंगल हैं और छोटा सा बंजर इलाका है। उत्तरी क्षेत्र में जंगलात हैं और भूमि उतनी उर्वर नहीं है पर पानी खूब बरसता है। पश्चिम में पहाड़ ही पहाड़ हैं।

क्रान्ति के पूर्व यूक्रेन में आबादी के बड़े और छोटे १३ प्रतिशत भूपतियों के कब्जे में ६० प्रतिशत कृषि-भूमि थी और किसानों की दशा बड़ी खराब थी। रूसी महाक्रान्ति के पश्चात् भूमि का बराबर हिसाब से पुनर्वितरण कर दिया गया। कृषि के समूहीकरण का कार्यक्रम राष्ट्रव्यापी रूप से १९२९ में उठाया गया पर उसके पहले, १९२६ में ही यूक्रेन में प्रयोगात्मक रूप से १०० कोलखोज बन चुके थे और सफलतापूर्वक कार्य कर रहे थे। यह पूर्व अनुभव १९२९ में बड़ा काम आया। १९२९ में शुरू होकर यूक्रेनी कृषि का समूहीकरण १९३३ में समाप्त हुआ।

इस समय यूक्रेन में १४,७१६ सामूहिक खेत (कोलखोज) हैं। विशाल राजकीय खेतों की संख्या ६३२ है। फिर चीनी इत्यादि कुछ औद्योगिक कारखानों के अपने निजी विशाल खेत हैं। सारे प्रदेश में १,१६८ मैशीन ट्रैक्टर स्टेशन हैं। सामूहिक खेतों के पास लगभग दो लाख बड़े और एक लाख छोटे ट्रैक्टर हैं और १६,००० लारियां और ट्रक हैं। ६५,००० हल भी कोलखोजों के पास हैं पर लगभग ६५ प्रतिशत यूक्रेनी कृषि यन्त्रीकृत है।

यूक्रेनी कृषि में अन्न उत्पादन के अलावा पशुपालन का बड़ा महत्त्व है। सोवियत संघ के कुल दुग्ध-उत्पादन का २५ प्रतिशत यहीं होता है। कृषि की मुख्य पैदावार गेहूँ है। यूक्रेनी गेहूँ पंजाब के गेहूँ की तरह सुप्रसिद्ध है। फिर मक्का और अलसी बहुत होती है और चुकन्दर के विशाल खेत हैं जिसकी ही चीनी वहाँ बनती है। जानवरों का चारा भी वहाँ बहुत होता है।

कई पाश्चात्य लेखकों ने यूक्रेन में कृषि समूहीकरण के दौरान होने वाले कृषक-उपद्रवों की तथा बल-प्रयोग की बहुत चर्चा की है और इसके सम्बन्ध में हमने यूक्रेन के कृषि-मन्त्री से प्रश्न किया। उन्होंने कहा कि छोटी-छोटी आराजियों के काश्तकारों को कोल-खोज में लाभ दिखा और वे उत्साह के साथ उसमें सम्मिलित हुए। बड़ी-बड़ी आराजियों के काश्तकारों ने कोलखोज में अपना लाभ न देखा, कारण छोटे काश्तकारों से वे अपनी खेती करवाते थे पर कोलखोज में उनको स्वयं परिश्रम करना लाजिमी था। उन्होंने ही विरोध किया और कुछ विदेशी साम्राज्यवादी शक्तियों ने उनकी कुछ सहायता भी की। पर उनको जनता का समर्थन न प्राप्त हुआ और कुछ दिनों बाद वे गाँवों को छोड़कर शहरों में चले गए और रूस के तेजी से विकसित होने वाले उद्योगों में खप गए।

मन्त्री ने बड़े खुले तौर से कहा कि वे जानते हैं कि पश्चिमी
[ले]खकों ने इन बड़े काश्तकारों (कुलकों) के मामले को बहुत रंगा
, पर हमारी वास्तविक भूल उस समय यह नहीं, एक और ही थी।
[उ]न्होंने साफ कहा कि समूहीकरण कार्यक्रम के प्रारम्भिक काल में
[अ]नुभव न होने के कारण प्रचारकों और कार्यकर्त्ताओं ने स्वैच्छिक
[रू]प से कृषकों को कोलखोजों में लाने के सिद्धान्त को कई जगह
[भ]ंग किया और दवाव का इस्तेमाल किया। पर यह भी सबसे बड़ी
[भू]ल नहीं थी वलिक समूहीकरण के जोश में कार्यकर्त्ताओं ने कृषकों
[के] जानवरों को, उनके घरों को, यहाँ तक कि कहीं-कहीं उनकी
[मु]र्गियों तक को सामूहिक सम्पत्ति में सम्मिलित कर लिया, जिससे
[छ]ोटी आराजियों के कृषकों में भी असंतोष फैला। पर यह भूल
[ज]ल्द ही सुधार ली गई थी। स्टालिन ने उसी समय एक प्रसिद्ध
[ले]ख लिखा था—"सफलता से चकराए।" उस लेख ने इस भयंकर
[भ]ूल को सुधार दिया। आज कोलखोजों में प्रत्येक किसान के पास
[उ]सका घर, उसका जानवर, उसकी मुर्गी और सुअर तो हैं ही,
[स]ाथ ही उसके पास दो तीन एकड़ निजी भूमि भी है जिसमें वह
[अ]पनी साग सब्जी, फल-फूल, जो चाहे सो पैदा करता है। मन्त्री
[न]े बताया कि इस समय यूक्रेन में कृषकों के पास द्वितीय महायुद्ध के
[पू]र्व जितने जानवर थे उसके तीन गुने हैं, और यह तब जब जर्मन
[आ]क्रान्ताओं ने करोड़ों यूक्रेनी जानवरों को नष्ट कर दिया था।

गत चालीस वर्षों में यूक्रेन की आर्थिक स्थिति में कितना मौलिक
[प]रिवर्तन हो गया है, उसका अनुमान पाठकों को इस बात से लगेगा
[क]ि जहाँ क्रान्ति के पूर्व यूक्रेन प्रान्त की ७५ प्रतिशत जनता कृषि पर
[आ]श्रित थी वहाँ इस समय केवल ३४ प्रतिशत आवादी कृषि में है।
[श]ेष उद्योगों में तथा अन्य व्यवसायों में जीविकोपार्जन करते हैं।

यूक्रेन की कृषि में जो आश्चर्यजनक प्रगति हुई उसमें वहाँ की कृषि विद्वत्-परिषद् का महत्त्वपूर्ण योग रहा है। परिषद् के अध्यक्ष रूस के एक सुप्रसिद्ध विशेषज्ञ प्रोफेसर रोमायेन्को हैं। रोमायेन्को ने कहा कि कृषि उत्पादन को बढ़ाने की समस्याओं का अध्ययन ही परिषद् का मुख्य काम है। परिषद् का कार्य निम्न पाँच विभागों में बँटा है—भूमि; मवेशी, कृषि मंत्रालय और विद्युतीकरण; जंगल और लकड़ी तथा सिंचन-सुविधा, कृषि अर्थशास्त्र। उन्होंने बताया कि इधर कृषि विद्वत्परिषद् में एक और विभाग बढ़ाने पर विचार हो रहा है, यथा, कृषि में अणु शक्ति का प्रयोग।

परिषद् के अनुसन्धान कार्य में नए किस्म के बीजों को कृत्रिम तरीकों द्वारा गढ़ने की ओर विशेष ध्यान दिया जाता है। रोमायेन्को ने कहा कि इस समय परिषद् एक नए किस्म के गेहूँ के शक्तिवान् बीज पर अनुसंधान कर रही है जिसके उपयोग से गेहूँ का उत्पादन कई गुना बढ़ जाने की आशा है। यूक्रेन के गेहूँ की बाहर बड़ी माँग है। ज़ारशाही के समय में भी लगभग एक करोड़ टन गेहूँ फ्रांस, बेलजियम आदि देशों को निर्यात किया जाता था। रूसी जनता भी यूक्रेनी गेहूँ चाहती है।

यूक्रेन का चीनी उत्पादन संसार में दूसरा स्थान रखता है, प्रथम स्थान क्यूबा का है। परिषद् का अनुसंधान-कार्य यहाँ भी उपयोगी सिद्ध हुआ है। चुकन्दर से ही वहाँ चीनी बनती है और चुकन्दर की खेती के विभिन्न कलापों में परिषद् का अनुसंधान-कार्य लाभप्रद रहा है। इसी प्रकार भूमि की उन्नति, अधिक दूध प्राप्त करने की दृष्टि से पशुपालन क्रमों में उन्नति, जानवरों के चारों में उन्नति, इत्यादि इत्यादि, सब ही में उसका कार्य उपयोगी सिद्ध हुआ है।

प्रोफेसर रोमायेन्को ने यह बताया कि कभी हम यूक्रेन में काफी कपास भी उगाते थे, पर अब कपास की खेती हमने लगभग खत्म कर दी है, कारण सोवियत संघ के कुछ केन्द्रीय एशियाई प्रान्तों में भूमि कपास के अधिक अनुकूल है। इस प्रकार जो भूमि खाली हुई उस पर गेहूँ उत्पादन शुरू कर दिया गया। रोमायेन्को ने एक दिलचस्प बात यह बताई कि परिषद् एक ऐसे अनुसन्धान में लगी है जिसका उद्देश्य पौधों को जल्दी से उगाना और बड़ा करना है और इसमें सफलता लगभग प्राप्त हो गई है।

हमको यूक्रेन के कोलखोजों को देखने का अवसर प्राप्त हुआ था और हमने किसानों के घरों में इतना अधिक गेहूँ एकत्रित देखा था जिसका पूरा उपयोग सारा परिवार कदापि वर्ष भर में नहीं कर सकता था। तो हमने रोमायेन्को से प्रश्न किया कि जब गेहूँ की खपत किसान नहीं कर पाता तो फिर क्यों उत्पादन बढ़ाने की ओर इतना ध्यान दिया जाता है।

रोमायेन्को ने इस प्रश्न का दिलचस्प उत्तर दिया। उन्होंने कहा कि यदि हमारे पास अनाज अधिक हो तो हम कृषि के दूसरे विभागों का और भी विकास कर सकते हैं। उन्होंने इस बात पर जोर दिया कि इस समय सारे सोवियत संघ में निम्न केन्द्रित नारे के अन्तर्गत सम्पूर्ण कृषि कार्य हो रहा है: "हमको रोटी, मांस और दूध-मक्खन के उत्पादन में संयुक्त राज्य अमरीका से बाजी मारना है।" वर्ष १९६० के अन्त तक रूस का ध्येय १८·७ करोड़ टन अन्न उत्पादन करना है जिसका पाँचवाँ हिस्सा यूक्रेन में होना है।

रोमायेन्को ने फिर कहा कि दुनिया के लोग यदि मांस का अधिक उपयोग करें तो अनाज की खपत कम होगी, और मांस

भक्षण अनाज खाने से कहीं स्वास्थ्यकर समझा जाता है। और उन्होंने कहा कि हम अधिक अनाज अधिक मांस की दृष्टि से उगाते हैं। हमने इसका स्पष्टीकरण चाहा। उन्होंने कहा कि अभी कोलखोज के सदस्यों को खूब गेहूँ मिलता है ताकि उनको पूरा संतोष हो। शीघ्र ही कोलखोज सदस्य अनाज की बजाय पैसे चाहेंगे। कोलखोज तब उनको अनाज के बजाय मुद्रा देगा और तब अनाज हम मवेशियों को खिला सकेंगे जिसके फलस्वरूप मांस और दूध दोनों ही और अधिक मात्रा में उपलब्ध होंगे और अमरीका से बाजी मारने का ध्येय प्राप्त हो जायगा।

अन्त में उन्होंने कहा कि सोवियत संघ में सब कार्यक्रमों और योजनाओं का एकमात्र उद्देश्य जनता के जीवन-स्तर को ऊँचा उठाना है। जब हम अमरीका से बाजी मारने की बात करते हैं तो उसका मूल उद्देश्य यही जीवन-स्तर ऊँचा उठाना है। इसका अर्थ केवल यही नहीं है कि हम रोटी, दूध-मक्खन और माँस उत्पादन में अमरीका से आगे बढ़ें वरन् यह भी है कि हमारी जनता की खरीद शक्ति बढ़े। और इधर जनता की खरीद शक्ति इतनी तेजी से बढ़ी है कि बाजार में उसको सन्तुष्ट करने के लिए प्रचुर मात्रा में सामान कम पड़ गया।

अन्न-उत्पादन को बढ़ाने का उन्होंने एक और कारण बताया। विदेशी व्यापार के लिए भी हमको अनाज चाहिये। फिर पड़ोसी समाजवादी देश हैं, बलगेरिया, रूमानिया, पोलैण्ड इत्यादि, इत्यादि। इन देशों की सहायता करना सोवियत संघ का कर्त्तव्य है और इन देशों को अनाज की जरूरत रहती है। फिर यह भी आवश्यक है कि बाढ़, सूखा तथा अन्य प्राकृतिक विपदाओं से सुरक्षा के लिए और यदि सोवियत संघ पर आक्रमण होता है तो युद्ध-

कालीन आवश्यकताओं के लिए अनाज हमारे गोदामों में रहे। पर अन्ततोगत्वा सोवियत कृषि का उद्देश्य अन्न उत्पादन और पशु-पालन के बीच सन्तुलन स्थापित करना है।

कीव से लगभग तीस मील की दूरी पर हमने एक सामूहिक खेत देखा जो हमको अन्य सब कोलखोजों से अधिक सुसंगठित प्रतीत हुआ। उसका नाम है चेरुना यूक्राइना कोलखोज, अर्थात् लाल यूक्रेन कोलखोज। उसके अध्यक्ष विनास्की माइखेल इसाकोविच से हम प्रभावित हुए। इसका संगठन १९३० में हुआ था। प्रारम्भ में केवल चालीस-पचास घराने सम्मिलित हुए, बाकी हवा का रुख देखते हुए इन्तजार करते रहे। बड़ी आराजी वाले कोलखोज विरोधी काश्तकारों ने जनता में तरह-तरह की गलत अफ़वाहें उड़ाईं। जब किसानों ने पहली बार ग्राम में ट्रैक्टर देखा तो उन्होंने साफ कह दिया कि यह लोहे का भूत भला क्या अनाज उगाएगा। फिर ग्राम में बिजली भी आई और हवा धीरे-धीरे बदली। १९३२ तक ९०० कृषक घराने कोलखोज में सम्मिलित हो गए।

हिटलरी सेनाओं ने इस कोलखोज को बिल्कुल ध्वस्त कर दिया और उसके क्षेत्र में युद्धबन्दी कैम्प स्थापित किया, जहाँ लगभग चार लाख युद्धबन्दी रखे गये थे। युद्ध के पश्चात् कोलखोज को फिर नए सिरे से बनाया गया। इस समय कोलखोज में काम करने वाले वयस्कों की संख्या १,१०० है, जिसमें से दो-तिहाई स्त्रियाँ हैं और एक-तिहाई पुरुष। वैसे कोलखोज की कुल जनसंख्या २,९०० है और उसके पास ६,४०० हेक्टेयर भूमि है (एक हेक्टेयर २.४७ एकड़ के बराबर होता है)। कोलखोज के मवेशियों की संख्या इस समय १,१०० है, जिसमें से ४२० गाएँ हैं। आगामी वर्ष के लिए कोलखोज

ने अपने सम्मुख निम्न ध्येय रखा है—५२० गाय, १,५०० सुअर, ५,५०० मुर्गियाँ और ३०० घोड़े।

कोलखोज में १०० हेक्टेयर भूमि पर फलों के बाग है। ५०० हेक्टेयर पर आलू बोया जाता है और शेष पर गेहूँ, बाजरा, मक्का इत्यादि होता है। मधुमक्खी-पालन विभाग भी कोलखोज में है और यहाँ की शहद प्रसिद्ध है। कोलखोज के प्रत्येक सदस्य के पास एक एकड़ या इससे कुछ कम भूमि निजी साग-सब्जी व फल-फूल उगाने के लिए है। प्रत्येक कोलखोज परिवार के पास एक-दो गाय, दो-तीन सुअर और मुर्गियाँ व बत्तख् हैं।

हमारा एक प्रश्न था कि कोलखोज सदस्यों को कितना किस प्रकार मिलता है ? कोलखोज में कृषि-कार्यों के अलग-अलग रूप निश्चित कर दिए गए हैं जिनकी संख्या लगभग ५०० है। प्रत्येक कृषि-कलाप के लिए वेतन दर निश्चित है। उदाहरणार्थ आलू का खेत तैयार करने की कोई दर है तो गेहूँ का खेत तैयार करने की दूसरी दर। इसी प्रकार गेहूँ बोने की कोई दर है तो खेत काटने की कुछ और दर। यह सब वेतन कार्यविशेष के लिए आवश्यक परिश्रम के आधार पर सर्व-सम्मति से निश्चित हुए हैं।

हमारा अगला प्रश्न कोलखोज की प्रबन्ध-प्रणाली के सम्बन्ध में था। इसाकोविच ने बताया कि कोलखोज के सब सदस्यों की आम बैठक ही सब मसलों पर फैसला करती है, पर चूँकि इतनी बड़ी बैठक जल्दी-जल्दी नहीं मिल सकती इसलिए दो आम बैठकों के बीच वह पूरा दायित्व एक चुनी हुई प्रबन्ध कमेटी को सौंप देती है। सामान्यतः एक कमेटी दो वर्ष के लिए चुनी जाती है पर यदि चुने हुए लोगों का कार्य असन्तोषजनक होता है तो उसको हटा कर दूसरी कमेटी चुनी जाती है। वस्तुतः प्रबन्ध कमेटी के कार्य पर

देख-रेख की निगाह रखने की दृष्टि से आम बैठक एक और कमेटी चुन देती है जो प्रबन्ध कमेटी से पूर्णतः स्वतन्त्र होती है।

हम इस कोलखोज के सदस्यों का निवास-स्थान देखने गए। एक छोटी सी बगीची से घिरा हुआ चार कमरों का एक मंजिला मकान था, सब सुविधाओं से युक्त। एक छोटा सा गोदाम कमरा था और लकड़ी की टाँड़ थी, जहाँ कृषक परिवार ने स्वश्रम द्वारा कोलखोज से अर्जित अनाज रख छोड़ा था। घर में बिजली थी, और सब ही घरों में रेडियो और टेलीविजन था। बताया गया कि 'गांव' में सौ घरानों के पास टेलीविजन सेट है। युद्ध के पूर्व किसानों के मकान एक कमरे के और फूस से छाए थे। अब नये मकान बन गये हैं और बनते जा रहे हैं। हर घर की बगीची में कुँआ है।

कोलखोज में तीन मिडिल स्कूल हैं जिनमें ६०० बच्चे पढ़ते हैं, और ४० अध्यापक हैं। शिक्षा पूर्णतः निःशुल्क है। कोलखोज का अपना अस्पताल है जिसमें ६ डाक्टर हैं और नर्सें हैं। अस्पताल में एक प्रसूतिका-गृह भी है। अस्पताल के डाक्टर गाँव के ही लोग हैं जो शिक्षा प्राप्त कर अपने कोलखोज में ही काम करते हैं। डाक्टरों और अध्यापकों का वेतन सरकार देती है। कोलखोज में तीन पुस्तकालय भी हैं जिनमें लगभग सात आठ हज़ार पुस्तकें हैं। पुस्तकालयों से बराबर पुस्तक लेकर पढ़ने वालों की काफी संख्या है। पुस्तकालय में वर्ष में १२,००० रूबल की सामयिक पत्रिकायें मंगाई जाती हैं। व्यक्तिगत रूप से भी बहुत लोग अखबार मंगाते हैं। कोलखोज के कई सदस्य ग्रेजुएट हैं। कोलखोज के लगभग सौ युवक बाहर विश्वविद्यालयों में उच्च शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं।

कोलखोज का अपना सिनेमा घर है जहाँ २०० व्यक्तियों के

बैठने की जगह है। सिनेमा नियमित रूप से दिखाया जाता है। ५०० सीटों का एक नया सिनेमा घर बन रहा है। मास्को, लेनिनग्राड, कीव, इत्यादि-इत्यादि स्थानों की प्रसिद्ध सांस्कृतिक टोलियाँ समय-समय पर आमन्त्रित की जाती हैं। दूसरे कोलखोजों के सांस्कृतिक दल यहां आकर अपनी कला दिखाते हैं और यहाँ की सांस्कृतिक टुकड़ी भी बाहर जाती रहती है।

इस कोलखोज में ११ दूकानें हैं जहाँ जूते, कपड़े तथा अन्य आवश्यक सामान बिकता है। साठ वर्ष के बूढ़े और ५५ वर्ष की वृद्धाओं को कोलखोज ने पेन्शन देना शुरू कर दिया है। विधवाओं को विशेष रूप से कोलखोज सहायता प्रदान करता है। विधवा चाहे तो कोलखोज उसके लिए मकान बनवा देता है।

यूक्रेन की सफल कृषि का आधार उसके सुसंगठित कोलखोज हैं। सामूहिक रूप से कार्य करते हुए भी निजी व्यक्तिगत जीवन स्थापित रखना इस कोलखोज प्रणाली की विशेषता है। और यह प्रणाली एवं जीवन-व्यवस्था वहां के मानवों के सहज स्वभाव का अंग बन गई हैं। जर्मन आक्रान्ता जब सब कुछ विध्वंस कर यूक्रेन से भागे तो पुराने कोलखोज अपनी-अपनी जगह पर तुरन्त ऐसे स्वतः प्रकट हो गए मानो पृथ्वी से वे उग आए हों। और इस कृषि-व्यवस्था के अन्तर्गत यूक्रेनी किसान समृद्ध, प्रसन्न और सन्तुष्ट है।

लेखक और माकारोविच

लेखक ताशकन्त में पायनियर बच्चों के साथ

तोलोश वैसिली माकारोविच

चेरूना यूक्राईना कोलखोज के दफ्तर में बैठे हुए हम जब उसके अध्यक्ष विनार्स्की माइखेल इसाकोविच से बातें कर रहे थे तब ही तोलोश वैसिली माकारोविच दबे पाँव कमरे में दाखिल हुए। माइखेल इसाकोविच ने वैसिली माकारोविच से मेरा परिचय कराया। अपने बड़े-बड़े लम्बे हाथों में मेरा हाथ लेकर उन्होंने उसे काफी हिलाया, और बड़ी खुशी प्रदर्शित की। फिर वे हम लोगों के साथ बैठे रहे।

वैसिली माकारोविच का व्यक्तित्व सहज रूप से प्रभावित करने वाला है, और बरबस अपनी ओर ध्यान खींचता है। मुख पर सब से प्रभावशाली उनकी बड़ी घनी, काली मूँछ है, जिसका क्षेत्र गालों तक व्याप्त है। गालों की हड्डियां उठी हुई है और आँखें छोटी पर बड़ी तेज हैं। अवस्था उनकी साठ की है। चौड़ा मस्तक है, बाल घने हैं पर काफी सफेद हो चुके है। रँग उनका गेहुँआँ है, काफी गोराई लिये हुए। गंभीर उनकी मुद्रा है और बहुत कम उनकी बोलने की आदत है। आवाज बहुत भारी, भर्राई हुई सी, हमको अपने पड़ोसी एक लाला की आवाज़ याद आ गई जो बहुत हुक्का पीते थे।

वैसिली माकारोविच पर अवस्था का असर जरूर झलकता था, गले के मांस में झुर्रियाँ पड़ गई थी और चेहरे पर भी बड़ी अवस्था के चिन्ह थे। पर इस सब के बावजूद उनका व्यक्तित्व दृढता और शक्ति का द्योतक था। खाकी रँग का पतलून और कोट

वे पहने थे और किसी खेत से ही वे संभवतः सीधे वहाँ आए थे। यूक्रेनी किसान के वे टिपिकल नमूना थे।

हम जिस कमरे में बैठे थे उसके ठीक बाहर, खिड़की से लगभग पन्द्रह कदम की दूरी पर, एक फुलवारी के बीच एक स्मारक था। एक बड़ा सा स्मारक-पत्थर कलात्मक रूप से कटा हुआ पृष्ठ-भूमि में था और सामने एक सोवियत सैनिक की स्टेचू थी। बताया गया कि उसी स्थान पर जर्मन आक्रमणकारियों ने द्वितीय विश्वयुद्ध में ९०० रूसी सैनिकों और नागरिकों को गोली से उड़वा दिया था। वस्तुत: उस कोलखोज में स्त्रियाँ दो हिस्सा और पुरुष एक हिस्सा हैं, और उनमें काफी विधवाएँ हैं जिनके पति या तो उस नरसंहार में या सोवियत सेना के सैनिक के रूप में युद्ध में हताहत हुए। हमने कई घरों में विधवाओं को अपनी अकेली-दुकेली सन्तानों के साथ, जीवन व्यतीत करते देखा। उनकी मेजों पर और कमरों की दीवारों पर दिवंगत पति के चित्र थे। उन विधवाओं की शकल नहीं भूलती। वे खुश थीं, चिन्ता विमुक्त थीं, पर उनके व्यक्तित्व से एक मुर्झायापन, एक अतृप्ति, एक दबी वेदना, घना दुःख मानो छुटकता था।

यह चेरूना यूक्राईना कोलखोज हिटलरी सेनाओं की आँखों का काँटा बन गया। बस्तुतः उस तमाम क्षेत्र की ही क्रान्तिकारी परम्पराएँ हैं, और रूसी क्रान्ति के समय से ही वहाँ के लोगों ने क्रान्ति में आगे बढ़कर हिस्सा लिया। वैसिली माकारोविच वहीं के पुश्तैनी रहने वाले हैं और क्रान्ति के समय उनकी लगभग बीस वर्ष की अवस्था थी। उनके पिता भूमिहीन कृषक थे और मजदूरी कर परिवार का किसी प्रकार पेट पालते थे। गाँव का जमींदार सिमाकी नामक एक हृदयहीन पुरुष था जो बड़ी निर्दयता से किसानों

का शोषण करता था। कभी-कभी उनके पिता को अध बटाई पर भूमि काश्त के लिए सिमाकी से मिल जाती, पर इसके एवज़ में आधी पैदावार लेने के अलावा वह तरह-तरह की और सेवाएँ मुफ्त वैसिली माकारोविच के परिवार से लेता था।

वैसिली माकारोविच ने कहा "हमारा परिवार आधे पेट रहा करता था। शायद ही कभी हमको खाने के लिए गोश्त मुयस्सर होती थी, हमारे लिए जिन्दगी में कोई अच्छी बात नहीं थी। जमींदार हम लोगों को इन्सान नहीं समझता था। हम लोगों से जानवर सरीखा व्यवहार किया जाता था। हम सब बहुत दुखी रहा करते थे।" फिर वैसिली माकारोविच कुछ रुके। बोलने की आदत उनकी नहीं है। थोड़ा रुक कर एक ठंडी साँस ले उन्होंने कहा—"अब सोचता हूँ तो वे दिन एक भयावने स्वप्न से लगते हैं, विश्वास ही नहीं होता कि इन्सान का ऐसा जीवन हो सकता है जैसा हम लोगों का था।"

माकारोविच ने रूसी क्रान्ति के अपने संस्मरण सुनाए। जब पहला विश्वयुद्ध तीन-चार साल चल चुका तब जनता का जीवन बड़ा ही कठिन और असह्य हो गया। सबों में विद्रोह की प्रबल भावना उठी थी और सबों में यह दृढ़ विश्वास था कि यह दशा अब नहीं चलने देना है, इसे खत्म ही करना है। क्रान्तिकारी प्रचारक कभी-कभी लुके छिपे गाँव में आते थे, कुछ पर्चे बाँटते थे और लोगों को उनकी गरीबी और बदहाली का कारण समझाते थे तथा सारी सड़ी गली व्यवस्था को बदलने के लिए क्रान्ति की आवश्यकता पर ज़ोर देते थे। कुछ किसान इन क्रान्तिकारियों की बातों का समर्थन करते थे, और कुछ उन्हें खतरनाक समझ उनसे दूर रहते

थे। वैसिली माकारोविच स्वयं क्रान्तिकारी विचार-धारा के उत्साही समर्थक थे।

इधर क्रान्तिकारियों का प्रचार-कार्य चल रहा था और दूसरी ओर ऐसे भी समाचार फैल रहे थे कि जमींदार लोग अपने-अपने घरों में शस्त्र एकत्रित कर रहे हैं। किसानों में एक बार यह खबर बहुत गर्म हो गई कि विश्नीयाव्स्की नामक एक जमींदार ने अपने घर पर कई किस्म की बन्दूकें इकट्ठी कर ली हैं और किसानों के बढ़ते हुए विद्रोही रवैये को कुचलने के लिए वह शीघ्र आक्रमण करने वाला है।

इसी समय उस क्षेत्र के किसानों ने अपना विद्रोही कदम उठाया। लेनिनग्राड में और मास्को में तथा अन्य केन्द्रों में होने वाले जार-विरोधी विद्रोहों के समाचार आ चुके थे और लेनिन का नाम तेजी से लोकप्रिय होने लगा था। तो माकारोविच के गाँव वालों ने एक दिन विश्नीयाव्स्की के घर पर सहसा धावा बोल दिया। उसके घर के एक कमरे से कई टामीगनें बरामद हुईं। उसका मकान जला दिया गया और वह पीछे के दरवाजे से भाग निकला।

यही स्थानीय कृषक विद्रोह वैसिली माकारोविच का पहला क्रान्तिकारी अनुभव था। उसके संगठन में उनका कोई हाथ न था, वे केवल आक्रमण करने वाले किसानों के दल में सम्मिलित हो गए थे। हिम्मत की जरूरत थी और शुरू में जमींदार के घर से कुछ गोलियाँ चली थीं। माकारोविच का युद्ध-कौशल इसी छोटे से किसान-विद्रोह में प्रगट हुआ। सबसे निडर वे ही थे और उस दिन के विद्रोह के वे ही हीरो ठहराए गए।

जमींदार की सत्ता समाप्त होने पर भूमि पुनर्वितरण का काम

शुरू हुआ। पाँच हेक्टेयर (लगभग १३ एकड़) भूमि वैसिली माकारोविच के परिवार को मिली और एक घोड़ा भी। माकारोविच ने कहा—"भूमि-वितरण से किसानों को अवश्य बड़ा संतोष हुआ पर उससे तत्काल हमारी दशा में कोई सुधार न हो पाया। युद्ध के कारण बड़ी अव्यवस्था थी। जमींदारों ने अपने हथियारबन्द गुट्ट बना लिये थे जो किसानों के खिलाफ गुरिल्ला आक्रमण करते थे। फिर बराबर खबरें आ रही थीं कि तेरह-चौदह देशों की सेनाएं एक साथ रूस पर आक्रमण कर रही हैं और क्रान्ति खतरे में है। जमींदारों के गुट्ट बराबर तोड़-फोड़ की कार्रवाई करते थे। क्रान्ति-विरोधियों की बड़ी ताकत मालूम पड़ती थी।"

कुछ ही दिनों बाद समाचार आया कि जेनरल पेटलूरा नामक एक ज़ारशाही के समर्थक सेनापति की सेनाएँ कीव को घेर रही हैं और कीव खतरे में है। इसी समय किसानों को आह्वान हुआ कि वे क्रान्तिकारी सुरक्षा दलों में सम्मिलित हों। वैसिली माकारोविच इसमें अग्रगण्य रहे। जेनरल पेटलूरा की फौजों के साथ जर्मन और पोलिश फौजें भी थीं। माकारोविच ने कीव के इर्द-गिर्द इन आक्रमणकारियों के विरुद्ध युद्ध किया।

मेरा माकारोविच से निवेदन था कि वे १९१९-१९२० के गृहयुद्ध के दिनों की कुछ खास वारदातें हमको सुनावें। पर इस पर वे चुप रहे। हमने जब बार-बार कहा तो उन्होंने सिर्फ इतना कहा—"हमने स्वयं कोई खास कमाल का काम नहीं किया।" और फिर वे बड़े गंभीर हो गए, जैसे जाने क्या सोचने लगे हों।

वैसिली माकारोविच का विवाह १९१८ में हुआ था। इस समय उनके दो पुत्र और एक पुत्री है। पुत्री का विवाह हो गया है और दोनों पुत्र ठिकाने से लगे हुए हैं, एक रूस के नागरिक

उड्डयन में वायुयान चालक है और दूसरा रूसी सेना में इसी काम पर है। जब क्रान्ति-विरोधी १९२० के अन्त होते-होते पराजित हो गए तो अपने गाँव वापस आकर वेसिली माकारोविच ने खेती-बाड़ी शुरू की और पढ़ना सीखने लगे। बाद में उनकी स्त्री ने भी पढ़ना सीखा।

माकारोविच ने कहा कि अब देश में शान्ति स्थापित हो गई थी और किसान अपनी-अपनी आराज़ियों पर काश्त करने लगे थे पर जीवन कठिन था। देश बहुत गरीब था और उस गरीबी और अभाव का प्रभाव हर एक के जीवन पर था। सब ही चीज की कमी थी—पैसे नहीं थे, बीज व खाद नहीं मिलता था, जोताई करने के लिए घोड़े बहुत कम थे और ट्रैक्टरों का तो तब नाम ही न था। फिर क्रान्ति के कारण उन्मूलित जमींदारों व अन्य विस्थापित स्थिर स्वार्थ वालों ने अपने लुटेरे गुट संगठित कर लिये थे, पहाड़ों और जंगलों में छिपे रहते थे और और यदा-कदा गाँवों पर हमले बोल कर शान्तिपूर्ण किसानों को त्रस्त करते थे।

सन् १९२८ में कृषि के समूहीकरण का फैसला हुआ और जब वेसिली माकारोविच के ग्राम में यह निर्णय लागू होने लगा तो कठिन परीक्षा की घड़ी आई। और इस परीक्षा की घड़ी में माकारोविच फिर सहज रूप से आगे आये। गाँव के बड़े काश्तकारों ने और प्रतिक्रियावादी अवशेषों ने समूहीकरण को विफल करने की हर कोशिश की। अफवाहें फैलाकर जनता में बुद्धिभेद फैलाने से लेकर सशस्त्र विरोध और व्यक्तिगत हत्या तथा तोड़-फोड़ इत्यादि सब ही हथकंडे अपनाए गए। भयभीत किसानों में विश्वास बँधाना, उनको कोलखोज में सम्मिलित होने के लिए समझाना, विध्वंसकों के हमले से ग्राम की रक्षा के लिए रक्षक-दल संगठित

करना, सतर्कता से पहरा देना, यही उस समय का सबसे महत्वपूर्ण कार्य हो गया। इस समय वैसिली माकारोविच की हिम्मत और दिलेरी ने, और उनकी लगन ने साथी कृषकों को एक साथ बाँधने में बड़ा काम किया। इन्हीं को अपना सबसे बड़ा विरोधी समझ कर विध्वंसकों ने दो बार उनके घर में आग लगा दी।

मैंने और तफसील चाही पर माकारोविच बहुत शर्मीले और सादे व्यक्ति हैं; और अपने बारे में तो वे कभी कुछ कहते ही नहीं। मेरे प्रश्नों का तात्पर्य उनकी कुछ व्यक्तिगत बातों को जानना होता था पर सदा वे उसे पूरे गाँव के मसलों के साथ जोड़कर जवाब दे देते थे, अपने को पूरी तस्वीर से हटा देते थे। पर कोलखोज अध्यक्ष विनार्स्की माइखेल इसाकोविच ने बताया—और यह सबके विश्वस्त पचीस वर्ष से कोलखोज अध्यक्ष हैं, वे हटना चाहते हैं पर कोलखोज सदस्य हटने नहीं देते--कि उस कठिन समय में यदि माकारोविच न होते तो गाँव में अनर्थ हो जाता। उन्होंने कहा—"वैसिली माकारोविच बोलते बहुत कम हैं; यह करते ज्यादा हैं।" इस पर माकारोविच हो हो कर अपनी भारी आवाज़ में हँस पड़े—उस पूरी भेंट में उनकी बहुत कम हँसी में से एक।

और मुझे तब रोमांच हुआ जब इसाकोविच ने बताया कि वैसिली माकारोविच द्वितीय विश्वयुद्ध में स्टालिनग्राड में लड़े थे और फिर जब जर्मन फौजों को बुरी तरह खदेड़ती हुई विजयी रूसी फौजें बर्लिन पहुँचीं तो उस फौज में भी वे अग्रिम दल में से थे। इसके अर्थ यह हुए कि वैसिली माकारोविच ने अपनी फौजी टुकड़ी के साथ ढाई हज़ार मील से ऊपर भूमि नापी। स्टालिनग्राड के मोर्चे का ही युद्ध संसार के सबसे भयंकर युद्धों में गिना जाता है, और फिर वहाँ से सारा रूस देश और आधा योरुप

पार कर बर्लिन में पहले रूसी फौजी दस्तों के साथ होना—ऐसा पुरुष यदि लोहे का न कहा जाय तो और क्या कहा जाय।

वैसिली माकारोविच, जब उनके जीवन की यह बात हमको इसाकोविच बता रहे थे, बराबर खिड़की के बाहर देख रहे थे। मैंने उनकी आँखों को पकड़ने का प्रयास किया पर वे बराबर बाहर ही देखते रहे। उनकी वह बड़ी-बड़ी मार्शल बुदेनी जैसी मूँछ, वह उनका गझिन बालों वाला सर और चौड़ा मस्तक, उनकी नीली-नीली छोटी पर तेज आँखें और चेहरे का वह आत्मविश्वासी रूप, सब हम देखते रहे और सोचते रहे कि क्या-क्या इस व्यक्ति ने झेला होगा, कितनी हिम्मत की, कितने दम की जरूरत रही होगी उस महा अभियान में।

पर वे बेचारे विनम्र ही रहे। मेरे सवाल पर सवाल हों, मैं पूछूँ कि स्टालिनग्राड युद्ध की कौन सी बात तुमको सबसे अधिक याद आती है, या स्टालिनग्राड बर्लिन यात्रा में कौन सी सबसे खास बात हुई, इत्यादि तो वे सुनते रहे, कभी कुछ हाँ हूँ, कुछ कह दें पर बोलते कुछ नहीं। मैंने स्टालिनग्राड का सवाल फिर दोहराया तो वे सोचने लगे, जरूर मुझे संतुष्ट करने का उन्होंने एक दिमागी प्रयास किया। पर कुछ देर चुप रहकर वे बोले—"इतनी बातें स्टालिनग्राड में हुई कि मेरी समझ में ही नहीं आता कि कहाँ से शुरू करूँ।"

मुझे इतना पता चला कि वे भारी गोला बारूद चलाने वाले मोटर चालित फौजी दस्ते में थे। मैंने कहा कि जब तुम बर्लिन में पहुँचे तो क्या देखा। उन्होंने उत्तर दिया कि सबसे आगे टैंक (रण गाड़ियाँ) थे, वे उसके पीछे थे। मैंने कहा फिर भी आप जब बर्लिन शहर की सरहद के अन्दर घँसे होंगे तो कुछ तो देखा

होगा, मकानों की क्या दशा थी, नागरिकों का क्या हाल था, इत्यादि, इत्यादि। पर वे चुप रहे। मैंने कहा कि हिटलर तो रीखताग (जर्मनी का संसद् भवन) के नीचे एक जमींदोज कमरे में रहता था, और रूसी फौजें पहले उसी ओर बढ़ीं थीं तो तब की बताइये। उन्होंने इतना ज़रूर कहा कि रीखताग पर उन्होंने भी गोला मारा था, पर इसके आगे फिर वे चुप रहे। जब मेरे सवालों की ज़िद और बढ़ी तो जैसे खीझ कर उन्होंने जवाब दिया—"जब कोई गोलाबारी करता रहता है तो इधर-उधर देखता नहीं।"

सच्चा सिपाहियाना यह उत्तर था और हम मान गए। इसाकोविच ने बताया कि वैसिली माकारोविच को द्वितीय महायुद्ध के सात पदक प्राप्त हुए हैं, जिसमें एक स्टालिनग्राड में उनके द्वारा प्रदर्शित शौर्य के लिए मिला है और दूसरा बर्लिन विजय में उनके कर्त्तव्य के लिए। माकारोविच से पता लगा कि कम्युनिस्ट पार्टी के सदस्य वे द्वितीय महायुद्ध के काल में हुए, उसके पहले वे पार्टी के मेम्बर नहीं थे।

एक और मार्के की बात पता लगी। महायुद्ध में माकारोविच एक सामान्य सैनिक ही रहे, पर उनके दोनों लड़के सोवियत सेना में उच्च अफसर थे, दोनों ही लड़ाकू हवाई दस्ते में। जैसा हम ऊपर कह चुके हैं, उनमें से एक आजकल नागरिक उड्डयन विभाग में वायुयान चालक है और दूसरा सोवियत हवाई सेना में।

युद्ध समाप्त होने पर १९४५ में माकारोविच फौज से अलग होकर पुनः नागरिक जीवन में आ गए, और अपने पुराने चेरूना यूक्राईना कोलखोज में रहने लगे। उन्होंने कहा कि मैं अपने जीवन से सन्तुष्ट हूँ और अभी हम लोगों का जीवन और भी सुखी हो जायगा। आखिर में उन्होंने कहा—"मैं दो महायुद्ध देख चुका हूँ

और अच्छी तरह जानता हूँ कि युद्ध कितना भयंकर होता है। मैं नहीं चाहता कि दुनिया में कोई और युद्ध हो।"

फिर हम कोलखोज में घूमे और वैसिली माकारोविच बराबर साथ-साथ रहे। कोलखोज घूमते हुए हम बराबर उनको ही देखते रहे और उनका जीवट ही हमारे दिमाग में नाचता रहा। उनकी याद भुलाना नामुमकिन है। उनकी सादगी, सरलता और विनम्रता और उनका जीवट, उसकी याद आती रहती है। रूस के गाँवों में ऐसे जीवट वाले छितरे पड़े हैं। उस देश के महा बलशाली होने में ऐसे सीधे सादे लौह-पुरुषों का बड़ा योग है।

इल्या सुचकोव

इल्या सुचकोव बड़े मित्र किस्म के, यारबाश आदमी हैं। हर वक्त प्रसन्न रहना और साथ वालों को हँसाते रहना उनकी बड़ी खूबी है। हम मास्को से बाकू गए, फिर सुमगईत और सोची का चक्कर लगा और फिर कीव गए, और वहाँ से मास्को वापस आये। इन आठ दस दिनों की यात्रा में सुचकोव का बराबर साथ रहा, प्लेनों पर हम बगल में बैठे। ट्रेन में एक ही कूपे में हम रहे, नाश्ता, दिन का खाना और रात का खाना साथ हुआ, और जो कुछ हम देखने गए वहाँ तो उनका साथ रहा ही। इन दस दिनों में हम दोनों घनिष्ठ मित्र हो गए।

सुचकोव की बत्तीस वर्ष की अवस्था है। उनके माता-पिता दोनों ही कारखाने में काम करने वाले मजदूर हैं। सुचकोव ने विश्व-विद्यालय की शिक्षा प्राप्त की है और पत्रकारिता का भी डिप्लोमा लिया है। उनका वर्तमान व्यवसाय पत्रकारिता ही है। उस काम में उनको दिली दिलचस्पी है। वे डायरी लेकर चलते हैं, उसमें उनकी नोटिंग बराबर चलती रहती है। फिर उनकी फिकरे बाजी, सामने से गुजरने वाली चीजों और बातों पर उनकी टिप्पणियाँ, सब से ही उनका पत्रकार व्यक्तित्व टपकता है।

उनकी गेहुँआँ गोराई है, पश्चिमी योरुप के गौरांगों की लाल गोराई नहीं, आँखें नीली हैं, ओंठ कटीले हैं, नासिका बड़ी सुडौल है और सर पर गंजेपन का प्रारम्भिक आक्रमण स्पष्ट प्रतीत होता है। हँसते हैं तो बड़ा खुलकर, बिल्कुल ठहाके के साथ। फिर कभी

गम्भीर हुए, कभी किसी बात पर तैश से और जोरदारी से बातें कीं तो उस समय उनकी आकृति दृढ़ हो जाती है, आँखें चमकने लगती हैं, और उनकी उस वक्त की तेज़ी प्रभावशाली लगती है। आवाज उनकी गहरी, रोबदार और आत्मविश्वासी है और रूसी भाषा में जब वह प्रवाह के साथ बोलते हैं तो सुनना अच्छा लगता है।

वैसे वे अँग्रेजी बोल लेते हैं और हिन्दी भी उन्होंने पढ़ी है, पर उनकी हिन्दी में उर्दू शब्दों का प्रचुर समावेश रहता है। मैं जोर देता था कि मुझसे हिन्दी में ही बोलो, और वे पूरी कोशिश करते थे, पर फिर बहुधा अंग्रेजी का सहारा ले लेते थे। हिन्दी जैसी वे बोलते हैं उससे कहीं अच्छा वे उसे पढ़ लेते हैं। और हिन्दुस्तान में शिक्षा का विकास उनके विशेष अध्ययन का विषय है। हमारी प्रथम और द्वितीय पंचवर्षीय योजनाओं में शिक्षा का क्या कार्यक्रम निर्धारित हुआ, इसका उनको पूरा ज्ञान है। भारत में उच्च, माध्यमिक एवं प्रारम्भिक शिक्षा की इस समय क्या स्थिति है, यह वे बखूबी जानते हैं।

उनकी इस दिलचस्पी का और भारत से उनके गहरे स्नेह का कारण है। उन्होंने बारहा मुझसे कहा कि उन्हें हिन्दुस्तानी लोग बहुत अच्छे लगते हैं। वे भारत आ चुके हैं। लगभग एक वर्ष पूर्व एक सोवियत शिक्षा प्रदर्शिनी भारत आई थी। उस में मूलतः सोवियत संघ की प्रारम्भिक एवं माध्यमिक शिक्षा प्रणालियों का दिग्दर्शन था। वह प्रदर्शिनी दिल्ली, बम्बई और मद्रास में प्रदर्शित हुई थी। सुचकोव उसके साथ थे। प्रदर्शिनी देखने हजारों भारतीय आए और सुचकोव अपने कुछ और साथियों के साथ भारतीयों को प्रदर्शित सामग्री समझाते थे।

इस प्रकार सुचकोव हजारों भारतीयों के सम्पर्क में आए, लगभग तीन या चार मास उनका भारत रहना हुआ। और बस— "मुझे हिन्दुस्तानी अकवाम बेहद पसन्द है," यही वह दोहराते। मैंने कहा कि ठीक है बाबा, पर कुछ यह तो कहो कि हिन्दुस्तानी में अच्छा लगा क्या? तो वे हँसने लगे, कुछ सोचे कि क्या कहें, और ले देकर अंग्रेजी में दुहरा दे—"आई लाइक इंडियन पीपल।" आखिर इंडियन में क्या अच्छा लगा उनको, यह सुचकोव से निकालना पूरी समस्या बन गई। उनको मेरा सवाल लगो किस्म का लगे, वे हँस दें, और बहुत कहें तो यह—"वे इतने अच्छे हैं, दे आर सो गुड एण्ड नोबल।"

मैं हैरत में था। यह कि हिन्दुस्तानी उनको वास्तव में अच्छा लगता है, और वे मुझ हिन्दुस्तानी को खुश करने के लिए वैसा नहीं कहते थे, यह स्पष्ट था। पर क्या अच्छा लगा? और फिर उन्होंने कहा—"हिन्दुस्तानी स्त्रियाँ बड़ी सुन्दर होती हैं, मैं हिन्दुस्तानी औरतों को बहुत पसन्द करता हूँ।" मैंने मजाक भी किया कि हमको रूस में रूसी स्त्रियों से शादी कर रहने वाले कई भारतीय मिले, तो यदि रूसी पुरुष का भारतीय स्त्री से विवाह हो, और आप ही यह शुरुआत करें तो क्या बुरा है। वे अविवाहित हैं, और कुछ निराश से भी कि बत्तीस वर्ष की अवस्था तक विवाह नहीं हुआ तो अब क्या होगा, और मेरी बात सुन वे हँसे। उन्होंने मद्रास शहर में उनसे मिलने वाली किसी भारतीय स्त्री का नाम भी लिया कि क्या आप उसे जानते हैं। मैंने समझाया कि चालीस करोड़ प्राणियों का लम्बा-चौड़ा मेरा भारत है, यह कैसे सम्भव है कि मैं मद्रास में आपकी प्रदर्शिनी में आने वाली किसी महिला को जानूँ। वे हँसने लगे, कहा वह मुझे नहीं भूलती, वह इतनी समझदार, इतनी अच्छी थी।

एक दिन उन्होंने एक हिन्दुस्तानी कहानी सुनाई। एक गाँव में एक खाऊवीर कृपण था, जो अपने लालच और हविस में सड़ी और खराब हो जाने वाली चीजें भी खा लेता था। उसका पेट खराब हुआ तो वह गाँव के 'डाक्टर' के पास गया। स्पष्टतः सुचकोव का मतलब हमारे वैद्य या हकीम से था। उसने मरीज को आँखों की दवा दी। इस पर उस खाऊवीर ने कहा—"मुझे पेट की शिकायत है और आप आँख की दवा क्यों देते हैं।" डाक्टर ने जवाब दिया—"तुम्हारे पेट में कोई खराबी नहीं है, तुम्हारी आँखों को ठीक होना है कि खाने के पहले देखकर खाओ कि क्या सड़ा है और खराब है।" और यह कहकर, खूब-खूब हँसे सुचकोव और हँसी के मारे बुरा हाल हो गया, पेट में बल पड़ गए। और बाद में भी मैं यदि सिर्फ उनको उस खाऊवीर की याद मात्र दिला दूँ तो उनकी हँसी फूट पड़े।

भले वे हमको भारतीयों के उनको इतना भाने का कारण न बता सके पर भारत देश से उनकी मुहब्बत में सन्देह नहीं। उन्होंने अपनी यात्राओं की चर्चा की, बम्बई जाते इगतपुरी से कल्याण तक की मनोरम यात्रा उनके मस्तिष्क पर अंकित है। मद्रास से दिल्ली की लम्बी यात्रा, जिसमें मैदान, पठार, पर्वत, गुफाएँ सब ही पार होती हैं, उनको बहुत भली लगी। और उन्होंने कहा—"मुझे हिन्दुस्तानी बड़ा सीधा और सरल लगा। उसमें बड़ी सादगी है, कोई तिकड़मबाजी नहीं लगती। और हम विदेशियों के साथ तो हर हिन्दुस्तानी बहुत अच्छी तरह पेश आया।"

हाँ, उन्होंने साफ कहा कि हिन्दुस्तान की एक बात मैं नहीं पसन्द करता। बड़ा बिचक कर, बड़ी शक्ति से उन्होंने कहा—"आई डोण्ट लाइक, आई डोण्ट लाइक।" उन्होंने कहा, जहाँ जाओ

इतने लोग गरीब हैं, इतने गरीब हैं, "आई डोण्ट लाइक।" उन्होंने बताया कि दिल्ली में, बम्बई में, मद्रास में छोटे-छोटे भूखे से लगते बच्चे भीख माँगते हैं, उनको खाने को नहीं मिलता, "आई डोण्ट लाइक।"

सुचकोव जब यह कह रहे थे, उनके चेहरे पर वेदना लिखी थी, उस गरीबी से उनको चोट पहुँची थी, उनको हार्दिक दुःख हुआ था। उन्होंने कहा—"मैं ताजमहल देखने गया। वहाँ बड़े गरीब लगते थे लोग, बड़े और छोटे, और बड़ी दुःख भरी आँखों से हमारे सामने हाथ फैलाकर कुछ कह रहे थे। मुझे बहुत तकलीफ हुई। आई डोण्ट लाइक। मुझे लगा कि यह भूखे हैं, इनको खाने को नहीं मिलता। यह आई डोण्ट लाइक। मेरे जेब में तब जो कुछ पैसे रुपये थे, मैंने सब बाँट दिये। मुझे लगा कि इनको रोटी खाने को नहीं मिली है, यह भूखे हैं। हिन्दुस्तान में यह आइ डोण्ट लाइक।"

मैंने देखा, सुचकोव उस वक्त सच में पीड़ित लगे। सोशलिस्ट सोवियत देश में जन्म लेने और बड़े होने वाले उस रूसी नौजवान की आत्मा हमारे भूखे-नंगों को देखकर चीत्कार कर उठी, उसे बड़ी ग्लानि हुई, वह शायद समझते नहीं थे कि इतनी गुरबत हो सकती है, दाने-दाने को मानव इतना मोहताज हो सकता है, और भूखा आदमी इतना दयनीय होता है। सुचकोव की दयावान् आत्मा रोई, हमने उस आत्मा को साफ देखा।

और हमने यह भी देखा कि इल्या सुचकोव को अपने रूस देश से, और अपनी मास्को नगरी से कितना प्रेम है। वे ठेठ मस्कोवाइट हैं, वहीं पैदा हुए, वहीं बड़े हुए। बाकू जाते समय हम रात एक बजे के लगभग अपने होटल से बत्तीस मील दूर स्थित हवाई अड्डे

के लिए रवाना हुए थे। आधी रात का मास्को सुषुप्त सा बिजली की बत्तियों में जगमगा रहा था। सुनसान सड़कों पर मोटर सनासन तेजी से जा रही थी। और सुचकोव ने कहा—"मास्को सरकता जा रहा है।" फिर हवाई अड्डे से जब हमारा वायुयान उड़ा, नीचे जगमगाता वह बत्तियों का समुद्र दिखा, और फिर वह ओझल होने लगा तो सुचकोव ने भारी आवाज से कहा—"गुड बाई मास्को।" और दस दिनों बाद जब पिछली सन्ध्या कीव से चली हमारी ट्रेन, सुबह नौ बजे के लगभग मास्को नियराने लगा तो वैसे वैसे सुचकोव खुश होने लगे। और जब की वसकाया स्टेशन पर हमारी गाड़ी रुकी तो सुचकोव के मुख से अनायास जोर से आवाज फूट पड़ी, "मास्काउ।" बाकू में जब स्वचालित तैल-यन्त्रों (डेरिक) के जंगलों को देख मैं हैरत में था तो सुचकोव ने कहा—"उतने ही जितने गगन में तारे हैं," और हँसने लगे।

उनको सेना का भी अनुभव है। द्वितीय महायुद्ध के अन्तिम वर्षों में, जब वे लगभग १८ या १६ वर्ष के थे, वे फौज में भर्ती हो गए थे, सैन्य-शिक्षा ग्रहण कर ली थी, और मोर्चे पर भी पहुँचे थे, पर वास्तविक लड़ाई का अनुभव नगण्य ही रहा, कारण हिटलरी सेनाएँ परास्त हो चुकी थीं। फौज से हटने के बाद उन्होंने विश्वविद्यालय की शिक्षा और पत्रकारिता का डिप्लोमा लिया।

वैसे सुचकोव अभी अविवाहित हैं। कुछ नाउम्मीदी भी रहती है कि जब बत्तीस वर्ष तक वे शादी न कर सके तो अब क्या शादी होगी। बाकू में अली सोहबत और उनके साथी लोग सुचकोव के विवाह की समस्या लेकर काफी मजाक भी करते थे। एक साथी ने कहा कि सुचकोव का विवाह अजरबैजानी स्त्री से ठीक कराया जा सकता है पर शर्त यह है कि उनको मास्को छोड़कर अजर-

बैजान में रहना होगा। बातें मजाक की ही थीं, पर सुचकोव ने साफ कह दिया कि अपना मास्को शहर वे कदापि नहीं छोड़ेंगे। उन्होंने कहा मास्को में रह सकने का सौभाग्य हजार शादियों से श्रेष्ठ है।

वे कुछ रुग्ण थे और रूसी संविधान के अन्तर्गत स्वास्थ्य-लाभ के लिए एक स्वास्थ्य-केन्द्र जाने का उनका प्रबन्ध हो गया था। हमारे साथ जाने के कारण उन्होंने यह जाना दस दिनों के लिए स्थगित कर दिया था। मास्को वापस आने पर मुझे कुछ दिन और वहाँ रहना था और उन्होंने कहा था कि वे मिलने आवेंगे पर न आ सके। जिस रात मुझे मास्को छोड़ना था उन्होंने अपने स्वास्थ्य-केन्द्र से बारह बजे रात टेलीफोन किया। मिलने न आ सकने की माफी माँगी और मेरी सुखद यात्रा के लिए अपनी सद्भावनाएँ प्रगट कीं। मैंने धन्यवाद दिया और छूटते-छूटते अपने भारतीय ग्रामीण खाऊबीर की चर्चा टेलीफोन पर कर दी। और टेलीफोन के दूसरे अन्त पर उनकी सुपरिचित हँसी फूट पड़ी। मुश्किल से हँसी रोककर उन्होंने कहा कि वे फिर जरूर भारत आवेंगे, भारत उनको इतना अच्छा जो लगता है।

मास्को और मस्कोवाइट

मास्को और मास्को का क्रेमलिन—गत चालीस वर्षों में कितनी चर्चा इनकी संसार में हुई है। एक तरफ यह कोटि-कोटि मानवों के लिए प्रेरणा के स्रोत बने और दूसरी ओर उनको संसार पर हावी होने के लिए दृढ़प्रतिज्ञ, महान् आततायी शक्ति-गुट्ट एवं प्रणाली के प्रतीक के रूप में चित्रित किया गया। "क्रेमलिन के तेरह व्यक्ति"—यह एक जुमला था जो पश्चिमी साम्राज्यवादी देशों में घृणा के साथ लिया जाता था। संसार के सब ही देशों में कम्युनिस्ट दल बने और सब ही जगह स्थानीय प्रतिक्रियावाद ने उनको 'मास्को एजेंट' की संज्ञा प्रदान की। "मास्को गोल्ड" यानी मास्को से इन कम्युनिस्टों को प्राप्त होने वाली "प्रचुर धन-राशि" के अनेकानेक क़िस्से व्यापक हुए। एक ओर मास्को द्वारा इंगित मार्ग के अनुसार संगठित होकर संसार के श्रमजीवी वर्ग ने शोषण एवं शोषकों के विरुद्ध घनघोर संघर्ष किया, और आज कई देशों में वह सफल होकर शासन कर रहा है। दूसरी ओर संसार के धनपतियों ने, साम्राज्यवादियों ने इस शक्ति-केन्द्र के बने रहने को अपने अस्तित्व के लिए घातक समझ कर उसे विनष्ट और तहस-नहस करने के लिए सशस्त्र दखलन्दाजी से लेकर तोड़-फोड़, विध्वंसकारी कार्रवाइयों और जासूसी, सब का ही सहारा लिया। गत चालीस वर्षों में संसार में जितना भी राज-नीतिक साहित्य प्रकाशित हुआ है, सहजरूप से उसका ७५ प्रतिशत उस धारा के विषय में है, मास्को जिसका प्रतीक है। अस्तु।

मास्का जाने पर गत चालीस वर्ष का संसार का यह इतिहास ही स्वाभाविक रूप से मस्तिष्क में सबके ऊपर रहता है। जब आप मास्को की सड़कों पर घूमते हैं, जब वहाँ की भव्य इमारतें, वहाँ के ऐतिहासिक स्थल, और सर झुकाए, बड़े गहन-गंभीर लगते वहाँ के व्यस्त नागरिक अपने-अपने कामों से दौड़े जाते आपको दीखते हैं तो सहज रूप से, बरबस इतिहास की यह पृष्ठभूमि आपको जकड़ लेती है, उससे हटकर और अलग होकर आप मास्को और मस्कोवाइटों को नहीं देख सकते।

संसार के साम्राज्यवादियों की सारी घृणा, घृणा से ओत-प्रोत प्रचार, सारे सशस्त्र हमलों और विध्वंसकारी षड्यन्त्रों के बावजूद मास्को अपनी निराली शान और अदा के साथ, अपनी विशालता और महानता को लिये हुए, अजेय, लौह-शक्ति का प्रतीक बना डटा हुआ, आपको दीखता है। अजब उसकी शान है, गजब उसका रोब है, वह आगन्तुक पर हावी होता है, उससे बच निकलना असंभव है।

मास्कोई जादू का एक किस्सा सुनिए। इटली के एक विख्यात और प्रतिभावान फिलम डायरेक्टर पियत्रो मास्को आए। आने के चन्द दिनों बाद उनकी श्रीमती जी का रोम से ट्रंक-टेलीफोन आया—"प्यारे पियत्रो, मुझे नींद नहीं आती, मैं चिन्तित हूँ, क्या वहाँ तुमको मक्खन और रोटी खाने को मिलती है, क्या वहाँ शहर में आने-जाने के लिए तुम्हारे पास मोटर है, तुमको रहने को कमरा मिला है या कहीं सराय-वराय में पचासों और के साथ तुम पड़े हो।" पियत्रो हँसे, उन्होंने सीधे-सीधे अपनी श्रीमती को मास्को बुला लिया कि खुद आकर देख लो। और इन श्रीमती जी से मिलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। बड़ी बनी-ठनी, सजी-धजी,

हाथ पौगा-पौगा कर वह महान् आश्चर्य प्रगट कर रही थीं। उन्होंने माना कि एक हजार कमरों के चौतीस मंजिले जिस युक्रेन होटल में वह ठहरी है वैसा होटल योरुप में दूसरा नहीं है, और मास्को जैसा साफ-सुथरा भव्य नगर भी योरुप में विरला ही होगा। लंदन की बात आई तो उसकी गंदगी से उन्होंने अपनी नफ़रत साफ जाहिर की। और वह मास्को पर वस्तुतः रीझ गई थी, आने के दो दिन बाद ही।

डेनमार्क के दो युवक मास्को में मिले। उन्होंने एक पत्र की चर्चा की जो उनके एक दोस्त ने उनको उनके डेनिश नगर से भेजा था। पत्र में उनके मित्र ने बिदाई के समय न मिल सकने के लिए क्षमा माँगते हुए अपनी चिन्ता व्यक्त की कि "मुझे डर लगता है कि रूस के बोलशेविक तुम लोगों को साइबेरिया न भेज दें, या किसी और जगह बन्द न कर दें। पर घबड़ाना नहीं, ऐसा होने पर दो वर्ष के अन्दर हम सेनाएँ लेकर आयेंगे और तुम लोगों को आजाद कर लेंगे।" पत्र पढ़-पढ़ कर दोनों डेनिश युवक कितना हँसे। और उन्होंने कहा—"मास्को में हम बहुत ही सुख अनुभव कर रहे हैं। यहाँ आने के पूर्व हमें सोवियत संघ के बारे में बहुत सी बुरी बातें बताई गई थीं, लेकिन हमें विश्वास हो गया है कि सच्चाई इसके विपरीत है। हमारा मित्र इन्हीं बुरी बातों के प्रभाव में है। मास्को के समारोह से हम इतना गद्‌गद् हुए कि आँखें भीग गयीं। मास्को वासियों ने इतने स्नेह के साथ हमारा स्वागत किया कि हम यह भूल गए कि हम देश से दूर हैं।"

ऐसे मास्कोई जादू के हमको अनेकानेक उदाहरण मिले। मास्को में जिस प्रेम और सहानुभूति में लोग सराबोर हुए वह सब की अपेक्षा से परे था, और वह ऐसा है जिसे आजीवन कोई भूल

नहीं सकता। मास्को के संसार-प्रसिद्ध बोलशोई थियेटर में एक रूसी आपेरा अपनी आश्चर्यचकित करने वाली रफ्तार और भव्यता से चल रहा था, सीन खतम हुआ, और तीन मिनिट के लिए पर्दा गिरा। और बगल में बैठे स्वीडन के एक बुजुर्ग दक्षिण-पंथी व्यवसायी ने कहा : "हम तो जैसे स्वप्न-जगत् में हैं, परी देश में हैं। ऐसा भी जीवन हो सकता है, हम नहीं समझ सकते थे। कितनी गलत बातें रूस और रूसियों के बारे में हमारे देश के अखबारों में छपती हैं। पर हमने तो यहाँ टैंक और सिपाही नहीं देखे, हमको तो मुसकानों का और दोस्ती का, स्नेहशील युवक-युवतियों का सागर ही दिखा। मन तो यह कहता है कि सदा-सदा हम ऐसे ही जीवन में पड़े रहें।"

मास्को और मास्कोवासियों का अद्‌भुत आकर्षण है। मास्को नगर की शानो-शौकत, विशालता और सौन्दर्य वहाँ जाने वाले प्रत्येक व्यक्ति को प्रभावित करता है। मास्को की पहली झलक ही किसी को मंत्र-मुग्ध करने के लिए काफी है। हवाई अड्डे से शहर तक का पचीस मील का फासला है, और यहीं से इस अद्‌भुत नगरी का अनुमान लगने लगता है। पहले तो मीलों तक बड़ा चौड़ा रास्ता है, बिलकुल चिकनी और साफ सड़क और दोनों तरफ तरतीब से वृक्ष लगे हैं, पर वे पिछले कुछ वर्षों में ही 'मास्को को हरा करने' की एक सुनियोजित योजना के अन्तर्गत लगाए गए हैं। और फिर दूर से ही, यदि सन्ध्या वेला है तो गगनचुम्बी मास्को विश्वविद्यालय के शिखर पर एक लाल बत्ती चमकती दिखाई पड़ती है। फिर जब मास्को नगर की हद शुरू होती है और कुछ दूर आप और बढ़ते हैं तो ऐतिहासिक क्रेमलिन के टावरों पर चमकते लाल सितारे दूर से ध्यान आकर्षित करते

हैं। ऊँचे, काफी ऊँचे क्रेमलिन के यह टावर हैं, और जहाँ पहले जारशाही का निरंकुश शासन-केन्द्र था, वहाँ के टावरों पर चमकते यह लाल सितारे, सारे मास्को गगन पर मानो आच्छादित, नए जमाने और बदले दौर की घोषणा करते हैं।

मास्को विशाल नगर है, लगभग ८० लाख की बस्ती है। टोकियो ही इसकी टक्कर का विशाल नगर अब है। न्यूयार्क, लण्डन, वग़ैरह अब पीछे पड़ गए हैं। और नगर बनता ही जा रहा है। मास्को में घूमिए तो जगह-जगह भवन-निर्माण होता दिखलाई पड़ता है। मास्को को और बड़ा और भव्य बनाने की कोई योजना है, उसी के अन्तर्गत यह काम चल रहा है। एक तरफ जहाँ खाली पड़ी जमीन पर भवन बन रहे हैं वहाँ दूसरी तरफ़ पुराने मकानों को तोड़कर उनकी जगह गगनचुम्बी अट्टालिकाओं का निर्माण हो रहा है। पूरी की पूरी नई बस्तियाँ इस प्रकार बनी हैं। दस और बारह और उससे भी ऊँची मंजिलों के यह भवन हैं, इनमें अलग परिवारों के रहने के कमरे हैं, आधुनिकतम भवन-सुविधाओं का उनमें प्रबन्ध है।

मास्को में घूमने पर उसके दैत्याकार रूप का आभास तो होता ही है, पर साथ ही एक और बात मस्तिष्क पर असर डालती है। उन विशाल भवनों से, और नगर की सारी बनावट से, भव्यता के अलावा, एक अभेद्य पुख्तगी का, इस्पाती मज़बूती का, हिमाचल सदृश अटलता का अन्दाज होता है। वस्तुतः मास्को रूसी राष्ट्र का चरित्र दिग्दर्शित करता है। पुरानी ऐतिहासिक इमारतें हैं, फिर मास्को विश्वविद्यालय या विदेश मंत्रालय का नवनिर्मित भवन, या ऐसी ही अनेकानेक अन्य इमारतें हैं। इन सबों से कल्पना की चौड़ाई, क्रिया की शक्ति और चरित्र-दृढ़ता का अन्दाज़ सहज रूप से होता

है। आप अनायास महसूस करते हैं कि आप एक म ान् राष्ट्र के केन्द्र-स्थल में हैं।

किसी ने सही कहा है कि पूरा मास्को सम्पूर्ण रूप से देखने के लिए एक महीना, दो महीने नहीं, एक साल, दो साल चाहिएँ। पुरानी इमारतें हैं, पुराने कला-संग्रहालय और ऐतिहासिक स्थल है, फिर क्रान्ति के बाद की चीजें हैं। पुराने स्थानों में क्रेमलिन भवन या मेत्याकोव चित्र-गॅलरी ही देखा जाए तो कई सप्ताह चाहिएँ। फिर रूस के महान् साहित्यकारों के स्मृति-भवन हैं—पुश्किन, टाल्सटाय, दोस्तोवस्की इत्यादि, इत्यादि। साहित्यिक वृत्ति का पुरुष इन्हीं में ही समय खपा सकता है। फिर नई इमारतें हैं, नए संग्रहालय हैं। मास्को विश्वविद्यालय की चर्चा हम कर ही चुके हैं। फिर रूसी क्रान्ति संग्रहालय है, लेनिन संग्रहालय है। गोर्की पार्क है, गोर्की संग्रहालय है इत्यादि-इत्यादि। इनमें ही यदि कोई दिलचस्पी ले तो काफ़ी दिन देने पड़ेंगे। फिर मास्को शहर की जमींदोज रेल है, जो संसार में मास्को मेट्रो के नाम से प्रसिद्ध है। इस जमीन के अन्दर की रेलवे को बिना देखे कोई अन्दाज़ ही नहीं लगा सकता कि यह क्या है। उस रेलवे पर जब आप घूमते हैं तो हैरत में रह जाना पड़ता है। सब प्लेट फार्म अपनी अलग शान रखते है। दीवालों में चित्रों और स्थापत्य-कला द्वारा रूसी इतिहास और विशेष रूप से रूसी क्रान्ति का इतिहास दिखाया गया है। काम की सफाई और निर्माण की कला आश्चर्यचकित करने वाली है। आपको लगता है कि जैसे इहलोक से हटकर आप किसी और जगत् में पहुँच गए हैं।

मास्को नगर के एक छोर पर वहाँ की विश्वविख्यात कृषि-प्रदर्शनी है। यह एक स्थाई प्रदर्शनी है, कई एकड़ के घेरे में बनी

हुई। इसको ही पूरी तरह देखना हो तो दो सप्ताह चाहिए। सोवियत संघ के प्रत्येक गणतंत्र की इमारतें हैं और प्रत्येक इमारत में वहाँ की कृषि का, उसकी उन्नति का दिग्दर्शन करवाया गया है। सोवियत कृषि बहुत हद तक यंत्रीकृत हो चुकी है, और उसको भी इस प्रदर्शनी में दिखाया गया है। फिर सोवियत संघ में पशुपालन बहुत उच्च स्तर को प्राप्त हो चुका है। संसार के कुछ सर्वश्रेष्ठ बैल, घोड़े और गाय व भैंस इस प्रदर्शनी में हैं। और यह सम्पूर्ण प्रदर्शनी एक सुन्दरतम उद्यान से घिरी हुई है। उद्यान में भव्य फव्वारे हैं, बैठने की जगह, मनोरंजन का भी प्रबन्ध है। नित्य ही वहाँ दर्शकों की भीड़ आती है। प्रदर्शनी की इमारतें, उनमें प्रदर्शित चीजें, उसका प्रबन्ध, सब ही मास्को की महानता के अनुरूप है।

स्पष्ट है कि इस संक्षिप्त वर्णन में हम भव्य और महान् मास्को नगर की खासियतों की फेहरिस्त ही गिना सकते हैं, सो भी अपूर्ण ही रहेगी। सही ही सारा सोवियत देश मास्को पर गर्व करता है। और सही ही संसार के सब गुलाम देश और शोषित जनता मास्को को अपने एक अभेद्य दुर्ग के रूप में देखती है। किसी भी रंग के और किसी भी देश के नागरिक को मास्को में मैत्री और सहज स्नेह व सहानुभूति प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होती है। वहाँ पैर रखते ही विदेशी यह अनुभव करता है।

यूक्रेन होटल का बड़ा विशाल भोजनालय है। उसके प्रबन्धक मुझे पता लगा है, एक ग्रीक (यूनानी) हैं। अधेड़ इनकी अवस्था है, टिप-टाप उनकी पोशाक रहती है, और बड़े मृदुभाषी हैं वे। सब अतिथियों की सेवा और प्रसन्नता उनका दायित्व है। हर एक की टेबल पर घूम कर वह हरएक की भोजन सुविधा पर ध्यान देते हैं। हर किसी से, वे कोई दिलचस्प बात भी कर लेते हैं।
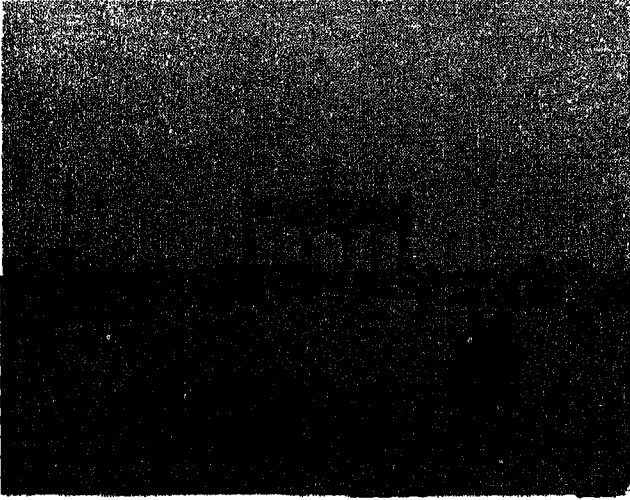
कृषि प्रदर्शिनी, मास्को

हमारे भी दोस्त हुए। पता लगा कि वे कायरो में, ट्रिपोली में, रोम में और मैड्रिड में, लन्दन में, पेरिस में, बर्लिन में और जाने कहाँ-कहाँ होटल प्रबन्ध कर चुके हैं। सब जगह घूम टहल कर वे मास्को में ठहरे। उन्होंने कहा : "यह अन्तर्राष्ट्रीय देश है। यहाँ राष्ट्र और राष्ट्र में फर्क नहीं किया जाता। यहाँ सब इन्सान एक माने जाते हैं। मैं बहुत देशों में रहा हूँ, बहुत राष्ट्र वालों को देखा है। मैंने यहीं रहना पसन्द किया। मुझे यहाँ शान्ति मिलती है।"

तो ऐसे मास्को नगर का रहने वाला मस्कोवाइट, जैसे उसे कहा जाता है, वह भी स्वभावतः खास किस्म का मानव है। अगर हम कहें कि मस्कोवाइट को मास्को नगर पर गर्व है, तो यह कथन मात्र वास्तविकता के अंश का ही द्योतक होगा। मास्को पर मस्कोवाइट गर्व ही नहीं करता, वह इस पर फिदा है, रीझा है, मास्को उसके रोम-रोम में व्याप्त है, मास्को की स्वाँसों में उसकी स्वाँस है। यह तब पता लगता है जब मस्कोवाइट मास्को से दूर हो और अपने नगर की आपसे बातें करे। यह तब भी पता लगता है जब मास्को नगर में ही रूसियों का ग्रुप आपस में मास्को की बातें करे और आप उसे सुनें-समझें।

और गहन गम्भीर है यह मास्को का नागरिक। अपने नगर की महत्ता का उसे ज्ञान है, मानव इतिहास की प्रगति में मास्को किस स्थान पर आज खड़ा है, वह यह जानता है, उस नाते मास्को नगर के नागरिक की हैसियत से उसकी क्या जिम्मेदारियाँ हैं, वह यह भी खूब समझता है। यह सब मिलकर मस्कोवाइट के व्यक्तित्व क[illegible]राली छाप देती हैं। एक तो समझदारी एवं गाम्भीर्य [illegible] मुख पर व्याप्त दिखता है। फिर वे बड़े आत्म-सम्मानी लगते हैं। जैसे वे सड़कों पर चलते हैं, जैसे बसों में वे बैठते व उतरते हैं,

मास्को मेट्रो में जो उनका रूप सामने आता है, इनसे मस्कोवाइट की गहनता, गम्भीरता और आत्मसम्मान का भास होता है।

और शुरू में आपको इस गाम्भीर्य और गहनता के साथ-साथ ठंडक दिखाई पड़ेगी, आप समझेंगे कि मुझ आगन्तुक की तरफ इनके दिलों में कोई गर्माहट नहीं है। पर यह भावना क्षणिक ही रहती है। पहली ऊपरी ठण्डक के नीचे शीघ्र ही समझदारी से भरी मुस्कराहटें और सहानुभूति जाहिर होते देर नही लगती। वस्तुतः विदेशी के प्रति यह मित्रभाव मस्कोवाइट की सब से बड़ी खूबी है। पचासों वृत्तान्त हमने सुने जब इधर-उधर भटके विदेशियों को किसी मास्को नागरिक ने सहायता दी।

यह मस्कोवाइट विनोदप्रिय है, और भावुक है। भावुकता तो सच पूछिये स्लाव नस्ल के लोगों की विशेषता है। और मस्कोवाइट का भावुक रूप सिनेमा में और आपेरा हाउसों में देखने को मिला। करुणारस के दृश्य आने पर उनके नेत्र सजल हुए। रूसी नेताओं की भारत-यात्रा का चित्र देखकर सारे का सारा हाल रोने लगा। फिर विनोदप्रियता उनके हास्य रस प्रधान सांस्कृतिक कार्यक्रमों के समय देखने को मिली। वहाँ एक हाल है, जहाँ कठपुतलीं का खेल होता है। पूरे दो-तीन घण्टों का कार्यक्रम होता है, हाल खचाखच भरा रहता है और पूरी कला को आश्चर्यजनक रूप से विकसित कर लिया गया है। काठ के वे नायक, समूह में बैंड बजाते हैं, युद्ध करते हैं, गोले छोड़ते हैं, तलवार और तीर चलाते हैं। और पूरा रूप हास्य से ओत-प्रोत होता है। और मस्कोवाइट का ठहाका-हँसी देखना हो तो वहाँ जाइए।

मस्कोवाइट को जीवन से प्रेम है। जीवन का आनन्द लेना वह जानता है। खूब खाता है, खिलाता है और मनोरंजन कार्य-

क्रमों में जाता है। मास्को में पचासों सिनेमाघर हैं, दर्जनों ड्रामा हाल हैं, कई आपेरा हाल हैं, सबों के टिकट हफ्तों और महीनों पहले बुक होते हैं। विदेशी फिल्में वहाँ खूब देखी जाती हैं। भारतीय फिल्में लोकप्रिय हैं ही, चीनी, मिश्री, हिन्देशियाई, फ्रेञ्च, अमरीकी, इत्यादि, इत्यादि फिल्में भी वहाँ खूब चलती हैं। लोगों को थोड़े ही समय काम करना पड़ता है, काफी आय होती है, और मनोरंजन के लिए, सांस्कृतिक प्रेम को बढ़ाने के लिए यही चाहिए।

स्वभावतः मस्कोवाइटों के अपने प्यारे मास्को नगर के लिए अनेकानेक गाने हैं। और सब ही मस्कोवाइट इन गानों को गा सकते हैं। समूह में वे पिकनिक में गए तो गाते हैं, सड़कों पर चले पाँच छः तो गाते चलते हैं। एक गाना है, उसका एक पद कुछ इस प्रकार है—

हमारा देश बड़ा चौड़ा है,
इसका बड़ा विस्तार है,
हमारे यहाँ जैसे जंगल हैं,
और हमारे देश के जैसे पर्वत हैं,
वैसे भला और कहाँ हैं ?
और उत्तर में हमारा देश आर्कटिक तक है,
पूर्व में समुद्र लहलहाता है,
दक्षिण में हम कास्पियन तट के भी नीचे तक फैले हैं,
और पश्चिम में हमारे स्लाव बन्धु हैं,
और इस विशाल देश के केन्द्र में है,
हमारा चमकीला सुनहला मास्को,
हमारा प्यारा दुलारा मास्को।

एक और गाना सुनाया गया हमको ! उसका एक पद कुछ यूं है—

मै दूर देश चला गया,
दूर, बहुत दूर,
और मै अकेला ऊबने लगा,
और मुझे बराबर याद आता रहा,
अपने देश की राजधानी, सुनहला मास्को।